नादार्चन

विशेषाङ्क

1995

With Best Compliments From :

DLW Cinema Club

Members are requested to please keep the hall and surrounding clean and tidy.

From

DLW Cinema Club

उपहार-प्रति

नादार्चन संगीत-वार्षिकी

सम्पादक : डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

NADARCHAN MUSIC-ANNUAL

Editor : Dr. Adinath Upadhyaya

1995

स्थापना : 1991
प्रेरणा : पं० दिवाकर पाठक
परामर्श मण्डल :
उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ
डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा
डॉ० (श्रीमती) एन० राजम्
डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर
डॉ० सुभद्रा चौधरी
संपादन-सहयोग : प्रमोद कुमार पाठक
लेखा-नियंत्रण : राम जन्म उपाध्याय
संयोजन : शिवेन्द्र प्रताप सिंह, रमेश कुमार सिंह
मंच-नियंत्रण : करुणाकर ठाकुर, बनारसी पाण्डेय
मंचीय-व्यवस्था : कमला सिंह, समीर मजूमदार
जगदीश चन्द्र उत्तम, राजेश उपाध्याय
वितरण-व्यवस्था : जयप्रकाश सिंह, कैलाश निषाद
प्रसार व विज्ञापन : चेतन उपाध्याय
व्यवस्था : डॉ० विमला मुसलगाँवकर
पता : 374/ए डी० एल० डब्ल्यू०, वाराणसी–221004
दूरभाष : 372637

Established : 1991
Inspiration : Pt. Diwakar Pathak
Advisory Committee :
Ustad Bismillah Khan
Dr. (Km.) Premlata Sharma
Dr. (Smt.) N. Rajam
Dr. Gajanan Shastri Musalgaonkar
Dr. Subhadra Chaudhary
Editorial Assistance : Pramod Kumar Pathak
Account Control : Ram Janma Upadhyaya
Co-ordination : S. P. Singh, R. P. Singh
Stage Control : K. Thakur, B. Pandey
Stage Arrangement : K. Singh, S.K. Mazumdar
J. C. Uttam, R. Upadhyaya
Distribution : J. P. Singh, K. Nishad
Circulation & Advertisement : Chetan Upadhyaya
Management : Dr. Vimala Musalgaonkar
Address : 374/A. D. L. W., Varanasi-221004
Phone : 372637

पद्मपत्रप्रभः षड्ज, ऋषभः शुकवर्णकः । कनकाभस्तु गान्धारो, मध्यमः कुन्दसन्निभः ॥
पञ्चमस्तु भवेत् कृष्णः, पीतवर्णस्तु धैवतः । निषाद सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः ॥
मतङ्गकृत बृहद्देशी—'आवरण पृष्ठ पर अंकित सङ्गीत के सात स्वर'

* पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ लेखकों के अपने विचार हैं, सम्पादक किसी विवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है।
* कृपया सम्पादक की अनुमति के बिना पत्रिका का कोई भी अंश अन्यत्र प्रकाशित न किया जाय।
* The Articles published in the magazine are the views of the writer of their own. Editor is not responsible for any controversy.
* No portion of the magazine should be published anywhere else without the permission of the Editor.

★ शिव काली मन्दिर ★

विषय-सूची

1.	वाग्-स्तवन	शिवसेवक त्रिपाठी 'निर्जन'	1
2.	बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद का संगीत में विनियोग Application of Bimb-Pratibimb Theory In Music	डॉ० विमला मुसलगाँवकर (Dr. Vimla Musalgaonkar) Editor's Summary	2–4 5
3.	कंठ–कुबेर, काकु–कोविद, संगीत–मार्तंड पूज्य पंडित ओम्कारनाथ जी ठाकुर Kanth–Kuber, Kaaku–Kovid, Sangeet-Maartand Pujya Pandit Omkaarnaath Ji Thaakur	डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग' (Dr. Pradeep Kumar Dixit 'Neharang') Editor's Summary	6–8 9
4.	पटियाला घराना और ठुमरी Patiaala Gharaanaa And Thumari	डॉ० दीप्ति बंसल (Dr. Deepti Bansal) Editor's Summary	10–14 15
5.	सूरदास और शास्त्रीय संगीत Surdaas And Shaastriya Sangeet	डॉ० मुकेश गर्ग (Dr. Mukesh Garg) Editor's Summary	16–18 19
6.	वाद्यों के वर्गीकरण के अन्तर्गत 'वितत' शब्द का प्रयोग Use of the Term Vitat Under the Classification of Musical Instruments	डॉ० पुष्पा बसु (Dr. Pushpa Basu) Editor's Summary	20–22 23
7.	अखियाँ हरिदरसन की प्यासी Ankhiyaan Haridarasana Ki Pyaasi	प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा (Prof. Ravindra Nath Ojha) Editor's Summary	24–26 27
8.	राष्ट्रीय एकता में मंच कलाओं का योगदान Contribution of Performing Arts to the National Integrity	डॉ० अर्चना दीक्षित (Dr. Archana Dixit) Editor's Summary	28–29 30
9.	कलाओं के द्वारा होने वाली आनन्दानुभूति पर विचार करने के भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण Indian And Western Thoughts Regarding The Experience Of Delight Through the Arts	डॉ० सुभद्रा चौधरी (Dr. Subhadra Chaudhary) Editor's Summary	31–33 34
10.	Contribution Of The State Of Bikaner To The Development Of The Art Of 'Kathak' 'कथक' कला के विकास में बीकानेर राज्य का योगदान	Dr. Jai Cbhndra Sharma (डॉ० जयचन्द्र शर्मा) सम्पादककृत सार-संक्षेप	35–38 39
11.	Abhinavagupta on Nada अभिनव गुप्त की दृष्टि में नाद	Dr. R. Sathyanarayana (आर० सत्यनारायण) सम्पादककृत सार–संक्षेप	41–48 49
12.	हमारे लेखक–रचनाकार (Our Contributors)		50
13.	'नादार्चन' के पिछले अंको की विषयवस्तु		52
14.	हमारे सांस्कृतिक क्रिया-कलाप		55
15.	'नादार्चन'—विद्वानों एवं कला-मर्मज्ञों की दृष्टि में		59

प्रातःस्मरणीय परम विभूति

श्रीमद्अभिनवगुप्त पादाचार्य

को सश्रद्ध समर्पित

आमुख

नादार्चन-प्रवेशाङ्क के सम्पादकीय-प्राक्कथन में मैंने निवेदन किया था कि यह पत्रिका संगीत के प्रयोक्ताओं, श्रोताओं, शिक्षकों, शिक्षार्थियों, समालोचकों, आयोजकों आदि सभी के लिए उपकारक सिद्ध होगी। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते हुए नादार्चन का यह अंक अपने शैशव के पंचम वर्ष में प्रवेश कर चुका है। पाठकों की सुविधा के लिए पत्रिका का स्वरूप द्विभाषीय कर दिया गया है। अर्थात् हिन्दी लेखों का सार-संक्षेप अंग्रेजी में और अंग्रेजी लेखों का सार-संक्षेप हिन्दी में प्रस्तुत है।

नादार्चन का यह अंक, निरन्तरता के साथ अपने शैशव के 5 वर्ष पूर्ण करने के उपलक्ष्य में विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित हो रहा है। उपलब्धि के इस पावन अवसर पर मैं परम पिता परमेश्वर का बारंबार नमन करता हूँ। इस अवसर पर मैं सर्वप्रथम सहभागी लेखकों, रचनाकारों को हार्दिक साधुवाद देता हूँ, जिनके स्नेह-सौजन्य से ही ज्ञान-यज्ञ का यह गुरुतर संकल्प निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करता जा रहा है।

पूज्य बंगाली बाबा एवं समस्त गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनका आशीर्वाद ही मेरा संबल है। भ्रातृतूल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही नादार्चन के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ। समय-समय पर विचार-विमर्श में सहभागिता के लिए नादार्चन परामर्श-मण्डल के माननीय विद्वज्जनों एवं प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा को सादर साधुवाद अर्पित करता हूँ। पत्रिका के मुद्रण में नैतिक अवलंब प्रदान करने के लिए श्री कमलापति मिश्र, श्री झारखण्डे राय तथा श्री चन्द्रमणि ठाकुर, श्री ध्रुव कुमार मालवीय, श्री कृष्ण अवतार के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। पत्रिका के प्रकाशन एवं मुद्रण के विविध चरणों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से जुड़े डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार तथा श्रीमती सत्या उपाध्याय शास्त्री का सप्रेम स्मरण करता हूँ। सम्पर्क सूत्र व प्रूफ-रीडिंग जैसे विविध कार्यों में अर्पित सेवाओं के लिए श्री जयप्रकाश सिंह एवं श्री राजेश उपाध्याय को आशीर्वाद देता हूँ।

पत्रिका के मुद्रक श्री कमलनाथ मौर्य तथा उनके कर्मियों को प्राण-पण से उनको सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

इस अवसर पर मैं आदरणीया डॉ० विमला मुसलगाँवकर, श्री रमेश कुमार सिंह, श्री बनारसी पाण्डेय, श्रीकृष्ण सिंह तथा श्री चेतन उपाध्याय का विशेष रूप से स्मरण करना चाहता हूँ जिनके अथक परिश्रम व दायित्व-निर्वाह के फलस्वरूप ही 'नादार्चन'—1995' का यह अंक आपकी सेवा में प्रस्तुत कर सका।

शरद् पूर्णिमा, 8 अक्टूबर 1995
डीरेका, वाराणसी।

—आदिनाथ उपाध्याय

वाग्-स्तवन

—शिवसेवक त्रिपाठी 'निर्जन'

ब्रह्मसुते ! सविते !
जय माँ-कविते !
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !
कलिते, ललिते,
जय-जय अमिते !
माँ ! उर पुर ज्योतिर्मय कर दे !
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !
देव-वन्दिते !
ओज-मण्डिते !
निर्मल-निर्झर, नूतन स्वर दे !
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !
कल-कल गीते !
स्वर-संगीते !
सुमुखि शारदे ! मंगल वर दे !
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !
तव पद-पद्मे,
नीलोदधि में,
प्रणति निवेदन, पावन कर दे।
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !
जय-जय कविते !
जय माँ-कविते !
शुचि ब्रह्मनाद अंतस् में भर दे !!

□

बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद का संगीत में विनियोग

—डॉ॰ विमला मुसलगाँवकर

विचारों के आदान-प्रदान का एक मात्र सशक्त माध्यम वाणी है। शब्दात्मक संज्ञाएँ ही अमूर्त चिन्तन को मूर्तवत्ता प्रदान करती हैं। वाक् रूपी काष्ठकार[1] पदार्थानुकूल ध्वनि के स्वरूप को काट-छाँट, ठोक-पीट और घिस-घिसा कर सुघड़ बना देता है। और तब वे नवीन संज्ञाएँ जनमानस में पदार्थों की विशिष्टताओं के साथ उतार दी जाती हैं। अद्वैत वेदान्त में आचार्यों ने सृष्टि में आत्मा के प्रवेश[2] की चर्चा करते हुए सर्वप्रथम 'आभास' शब्द का प्रयोग किया है। यही 'आभास' बाद में आचार्य शंकर से लेकर विद्यारण्य तक आते-आते प्रतिबिम्बवाद में स्थिर हो गया। इससे पूर्व इसी सन्दर्भ में विवेचित अन्य दो संज्ञाएँ प्रतिच्छवि (Photography) और प्रतिच्छाया भी आईं। ये दोनों संज्ञाएँ प्रतिबिम्ब के समान नहीं हैं; क्योंकि छायात्मक प्रतिबिम्ब में बिम्ब के समान ही दिशा होती है जब कि प्रतिबिम्ब से बिम्ब की दिशा उलट जाती है। यथा पूर्वमुखी बिम्ब का प्रतिबिम्ब पश्चिमाभिमुख होता है। यही नहीं; दायें-बायें, ऊपर-नीचे आदि सत्यों के दर्शन प्रतिबिम्ब से ही दृष्टिगत होते हैं। प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छाया या प्रतिच्छविमात्र नहीं है।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की इसी धारणा को दार्शनिक मनीषी तथा संगीतशास्त्री अभिनवगुप्तपाद ने 'श्रुति', 'स्वर', 'वीणा' आदि संज्ञाओं के प्रयोग की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए अपनाया है। उल्लेखनीय यह है कि श्रुति, स्वर आदि नादब्रह्म के विवर्त रूप हैं। जीव के आत्मसाक्षात्कार की सिद्धि हेतु ग्रहण की गई धारणाओं में प्रतिबिम्बवाद की धारणा महत्त्वपूर्ण है। सभी दार्शनिक आचार्यों ने इस धारणा को विभिन्न दृष्टियों से अधिक से अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यापक चेतन-सत्ता की विविधात्मक अभिव्यक्ति के स्पष्टीकरण के निमित्त ही इस धारणा को स्वीकार करना पड़ा है। इस धारणा को आधुनिक विज्ञान का भी समर्थन प्राप्त है।

संक्षेप में इस धारणा के प्रमुख बिन्दुओं को निम्नाङ्कित कर देना अनिवार्य सा प्रतीत हो रहा है।

(1) प्रतिबिम्ब का अधिष्ठान बिम्ब ही है। प्रतिबिम्ब, बिम्बात्मक ही है। बिम्ब सदा स्वतः प्रकट है, वह प्रकाश रूप है। संगीत में भी (नाट्यशास्त्र में) वीणा के दो अधिष्ठान ही कहे हैं।[3]

(2) प्रतिबिम्ब में दिशा उलट जाती है। संगीत में, शारीरी वीणा (बिम्बरूपा) से दारवी वीणा की स्वराभिव्यक्ति में मन्द्र स्वर के स्थान पर दारवी वीणा में (नीचे) तार स्वरों की अभिव्यक्ति होती है। इससे भी नीचे, ऊपर का वही विपरीत भाव दृष्टिगत होता है।

(3) बिम्ब की स्थिरता वा गति उसके प्रतिबिम्ब में होती है। केवल प्रतिबिम्ब में स्थिरता अथवा गति दृष्टिगत हो, बिम्ब में न हो, यह कदापि सम्भव नहीं है।

(4) बिम्ब एक ही है पर प्रतिबिम्ब अनेक हो सकते हैं। यथा, सूर्य-चन्द्रादि एक हैं पर नदी के जल पर तरङ्गों के कारण उनके अनेक प्रतिबिम्ब दिखते हैं।

(5) रूपवान् का ही प्रतिबिम्ब संभव होता है। यह नियम अव्यभिचरित है। गेय श्रुतियों का अपना रूप होता है उसी से वे पहचानी जाती हैं। रूप के साथ रङ्गों का अविनाभाव संबंध है। स्वरों के भी रंग होते हैं, यह समस्त सर्वस्वीकृत तथ्य हैं।[4]

(6) माध्यम की अत्यन्त निकटता में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव शक्य नहीं हो पाता। दर्पण या जलपात्र, बिम्ब से दूर स्थित हों तभी प्रतिबिम्ब का ग्रहण होता है।

दर्शन में विवेचित प्रतिबिम्बभाव की धारणा के आधार पर सर्वप्रथम हम गेय ध्वनि अथवा 'श्रुति' के सम्बन्ध में प्रतिबिम्ब-धारणा को स्पष्ट करेंगे। शबर-स्वामी का कथन है कि प्रथम, मुख से उत्पन्न हुई ध्वनि वायु-मण्डल में व्याप्त होती है, फिर वही प्रत्यावृत होकर कर्ण-शष्कुली में प्रवेश कर अपनी ही ध्वनि को सुनने में उसे सक्षम बनाती है। अभिनवगुप्तपाद ने इस प्रक्रिया को 'प्रतिश्रुतिकता (Replica) संज्ञा से अभिव्यक्त किया है। यहाँ ध्वनि का श्रवण ध्वन्यात्मक प्रतिबिम्ब के माध्यम से होता है। यह सब इतनी शीघ्रता से होता है कि हमें इस बात का बोध हो, इसके पूर्व ही श्रवण-प्रक्रिया निष्पन्न हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इसी सिद्धान्त और प्रक्रिया का प्रतिपादन करते हैं। दर्पण में दीखने वाला प्रत्यावृत्त नेत्र-रश्मियों में गृहीत बिम्बरूप प्रतिबिम्ब ही ध्वनि के प्रसंग में भी अभिप्रेत है।[5] 'श्रुतिस्थाने,···श्रुतेरुपरञ्जक;···'[6] आदि कथन प्रतिबिम्बभाव की ही पुष्टि करते हैं। गेय ध्वनि में जो 'स्निग्ध', 'मधुर', 'रंजक' और 'अनुरणनात्मक' आदि विशेषण दिए गये हैं, उसका अभिप्राय उससे प्रस्फुटित होने वाले प्रकाशस्थानजन्य रूपात्मक विशिष्ट ध्वनि आकृति से ही सम्बद्ध हैं। स्वरों के लिए नियत 'चतु-श्चतुश्चतुश्चैव...' की श्रुति-व्यवस्था भी इसी तथ्य को इंगित करती है। मातृगुप्त ने'····'सहजेनैव, समस्तः श्रुति-विस्तरः स्वराधिष्ठानतः' में स्वर को ही श्रुति का अधिष्ठान माना है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण संज्ञा स्वर है। इस संज्ञा[7] का मूल-लक्षण 'योऽयं स्वयं राजते' है। पञ्चपादिका में पद्मपादा-चार्य ने प्रतिबिम्ब से बिम्ब को अभिन्न स्वीकार किया है, इसी प्रकार संगीतशास्त्रियों ने भी स्वर की सत्ता के सत्य होने का प्रतिपादन किया है। चाहे प्राण-प्रहार रूप 'स्वर' हो या हस्त-प्रहार रूप, मूलतः प्रहार दोनों में है जो स्वर को स्वरूप या आकृति-प्रदान करता है। इस प्रकार शारीरी वीणा के स्वर, दारवी वीणा पर बजने वाले स्वरों से पृथक् नहीं हैं। क्योंकि बिम्ब, प्रतिबिम्ब से पृथक् नहीं है।[8] प्रतिबिम्ब की बिम्ब से अभिन्नता ही उसकी सत्यता को प्रमाणित करती है। यही तथ्य वीणा के स्वर-सन्दर्भ में भी स्वीकार्य है। "स्वर, 'श्रुति' का रक्तताधर्म है"—यही तथ्य, वीणा के स्वरसन्दर्भ में भी स्वीकार किया जाता है। तथा स्वर—स रि ग के प्रतिबिम्ब 'प ध नि' को बताना और यह बताकर तीन ही मूल स्वर स्वीकार करना।

इसी प्रकार 'वीणा' के सन्दर्भ में—कण्ठ को शारीरी वीणा स्वीकार करना। शारीरी वीणा को 'दैवी वीणा' से घोषित करना तथा शारीरी वीणा की भाँति दारवी वीणा के अंगों में भी देवी-देवताओं की स्थापना करना। शारीरी वीणा में नीचे से स्वराभिव्यक्ति-क्रम मन्द्र से तार की ओर है, ठीक इसके विपरीत दारवी वीणा में ऊपर की ओर से मन्द्र से तार की ओर दृष्टिगत होता है।[9] [↑ | ↓] 'वीणा' शब्द की व्युत्पत्ति 'वेत्ति बुद्धिमात्र-मवगच्छतीति वीणा'; सृष्टि के विकासक्रम में 'बुद्धि' यानी प्रतिभा रूप नादात्मक चेतनतत्त्व को सृष्टि के तल तक जो उतार कर ले जाती है उसे 'वीणा' कहते हैं। इन सभी प्रसंगों का विश्लेषण करते समय 'बिम्ब' ही प्रधान रहा है। 'प्रतिबिम्ब-चितेः'[10] प्रतिबिम्ब 'चिति' स्वरूप है। 'चिति' ही आवरण से युक्त होकर प्रतिबिम्ब कहलाता है।

संगीत के अन्य स्थलों पर भी अभिनवगुप्तपाद ने इस सिद्धान्त का उपयोग किया है। वस्तुतः प्रमुख रूप से श्रुति, स्वर, वीणा आदि में यह प्रतिबिम्बवाद जितना मुखर है उतना अन्य स्थलों पर नहीं।

अभिनवगुप्तपाद की विलक्षण प्रतिभा ने संगीत के गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए दर्शन की धारणा 'बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद' को ग्रहण कर 'अभिनव भारती' के द्वारा नाट्य-शास्त्र की व्याख्या-प्रणाली को मौलिकता और स्पष्टता प्रदान की है।

पाद टिप्पणियाँ

1. ऐ० ब्रा० 6/4 त्वष्टारं यजति.....यजमाने दधाति ।
2. बृहदारण्यक 2/5/19 तथा 4/5/12 रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' कठ०
3. ना० सा० अनि० भा० 3/38/2 ।
4. नादार्चन संगीत वार्षिकी 1992, डॉ० आदिनाथ उपाध्याय का लेख ।
5. बृ मा० वा० 1/4/608
6. ना० शा० अभि० भा० श्लो० 21 की टीका
7. वही
8. पञ्चपादिका—2/9
9. ना० शा० अभि० मा० 4/28 श्लोक–21 पृ० 12 ग···'तद्तश्च रक्तताख्यो धर्मः स्वरः, इति'
10. अंशुवोधिनी···वीणा यान्तु आदर्शे वाम दणि,क्ष विपयसि तार मन्द्र विपयसि ।

···समग्र रूप से विचार करने पर रस-अवधारणा के ये उपादान बनते हैं—

1–विभिन्न प्रकार के आस्वादों के संयोग से एक ऐसा आस्वाद बन जाना, जिसमें सब अलग-अलग भी कुछ-कुछ प्रतीत हों, पर सबसे अलग कुछ प्रतीत हो, और उस आस्वाद के ग्राहक के स्तर का क्रमशः उन्नयन जिससे सतत अभिलषणीय आस्वाद के लिए उत्कंठा बनी रहे;

2–व्यष्टिचित्त के परिशोधन से उसमें निहित समष्टि-चित्त का तत्त्व पाने के लिए विचित्र प्रकार की आग में झोंकने की तैयारी और स्वभाव की पहचान पाने का सुख;

3–दिये हुए घटकों से अनदिया कुछ पाना, पूर्वज्ञात और पूर्व-अनुभूत से अपूर्व कुछ पाना, पाना नहीं बल्कि पाने के लिए अपने को रिक्त कर देना और फिर अपूर्वमय बन जाना; और

4–समष्टिचित्त और व्यष्टिचित्त के प्रसुप्त अन्तर्निहित परस्पर पर्युत्सुक भाव को जगाना और उस भाव से जुड़कर ज्योति का रस बन जाना ।

(सौजन्य – रस सिद्धान्त की भूमिका, विद्यानिवास मिश्र, पृ०x तथा xi)

Application Of Bimb-Pratibimb Theory In Music

(Dr. Vimala Musalgaonkar)

Editor's Summary

Bimb-Pratibimb theory has held a dominant place in Indian philosophy. However this concept was originally applied by the philosophers in view of unfolding the secret of universe i. e. interrelation between the Creator and the manifestation of the Creator. In what way the same concept applies to music, has been very distinctly discussed by Dr. Musalgaonkar. In the midst of her discussion our author has profoundly focussed Abhinavagupta and his concept on musical terminologies like Shruti (microtone) Swara (tone), veena etc. in the light of Bimb-Pratibimb theory.

In the concluding part of the article Dr. Musalgaonkar has justified the indebtness of the concept as it has proved to be a break-through in the field of thinking about the musical contexts.

•

The subject matter or the theme of the Dhrupada-texts could be clarified as—Naadabrahman themes, praise of gods & goddesses, praise of royal patrons, Naayak-naayikaa themes and beauties of nature.

—Adinath Upadhyaya

कंठ-कुबेर, काकु-कोविद, संगीत-मार्तंड पूज्य पंडित ओम्कारनाथ जी ठाकुर

— डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग'

जिन सहृदय रसिकों ने पू० पं० ओंकारनाथ जी के कंठ-वैभव को सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया है, जिन्होंने उनसे 'जोगी मत जा, मत जा', 'मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो' तथा 'वन्दे मातरम्' सुनने-समझने का सुअवसर प्राप्त किया है, उन लोगों के लिए प्रस्तावित लघु लेख का विशेष महत्व नहीं रह जाता, वे कंठ-कुबेर की स्वर-समृद्धि से परिचित हैं। वे काकु-कोविद की कलाकारिता से प्रफुल्लित हैं तथा वे सभी श्रोता संगीत-मार्तंड के ध्वन्यालोक से प्रभावित हैं। अस्तु, यह लघुलेख समर्पित है उन समस्त वंचित श्रोताओं को जो उन्हें सुन नहीं पाये। उन समस्त जिज्ञासुओं को जो राग और रस की एकात्मकता को समझ नहीं पाये तथा उन समस्त पिपासुओं को जिनकी प्यास अतृप्त रह गयी।

गुजरात के एक छोटे से गाँव, 'जहाज' में निर्धन किन्तु स्वमानी, योगी पिता के घर, साहसी और धैर्यवान मातुश्री झबेरबा की चौथी सन्तान (तीसरे पुत्र) के रूप में ई० 1897 की 24 जून को एक बालक का जन्म हुआ। तपोनिष्ठ पिता की सेवा करते हुए, कर्तव्यनिष्ठ माता को सहयोग देते हुए, जीवन की विपदाओं का दृढ़ता से सामना करते हुए बालक ओम्कारनाथ का बाल्यकाल बीता।

बालक की सांगीतिक प्रतिभा को पहचान कर भडोंच के पारसी सेठ श्री शाहपुरजी ने ओंकारनाथ की संगीत-शिक्षा की व्यवस्था संगीतोद्धारक पू० पं० विष्णुदिगंबर पलुस्कर जी के गांधर्व महाविद्यालय में करवा दी। फिर तो क्या था ? योग्य गुरु को योग्य शिष्य मिलना, सोने में सुहागा की भाँति निखर गया। अपने अध्यवसाय, लगन तथा अनवरत साधना से महाविद्यालय का आठ वर्षों का पाठ्यक्रम मात्र साढ़े तीन वर्षों में सम्पन्न करते हुए ओम्कार, पं० ओम्कारनाथ बन गये।

शिष्य के विकास से प्रसन्न होकर गांधर्व महाविद्यालय की लाहौर-शाखा का नेतृत्व गुरुवर्य पलुस्कर जी ने ओम्कारनाथ को सौंपा। विश्वविश्रुत पहलवान गामा के निर्देशन में तन को कसा। गुरुवर्य के निर्देशानुसार साधना के सोपान चढ़ते हुए सिद्धि प्राप्त करते गये और दो-तीन वर्षों के ही अन्तराल में संगीत के क्षेत्र में दिग्विजय-यात्रा पंजाब से ही प्रारम्भ की। पूना तक छा गये। सुदूर गुजरात के छोर से बंगाल के हृदय, कलकत्ता पर्यन्त जीतते चले गये।

भड़ोंच में आकर स्थिर हुए। गृहस्थ-जीवन का प्रारम्भ हुआ। किन्तु, ओम्कारनाथ जी तो रागों के रहस्य खोजने में मग्न रहे। स्वर की भाषा समझने, समझाने में व्यस्त रहे। पंडित जी के सांगीतिक जीवन का यह स्वर्ण-काल (ई० 1925 से 1930) था जब उन्होंने स्वर की शक्ति को माना, जाना, पहचाना। रागों के दर्शन किये-कराये तथा संगीत के सौन्दर्यतत्त्व को प्रस्फुटित किया।

भारतीय संगीत के सच्चे प्रतिनिधि बनकर यूरोप गये। अचानक पत्नी और नवजात शिशु की आकस्मिक-असामयिक मृत्यु का मर्मान्तक समाचार मिलते ही यात्रा अधूरी छोड़कर भारत लौटे, बम्बई में स्थिर हुए। भड़ोंच का संगीत-निकेतन बम्बई में स्थानान्तरित हो गया तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1941 मेंबम्बई से सूरत आ बसे। विद्या-दान के साथ-साथ देश-विदेश में गायन, सोदाहरण व्याख्यान के कार्यक्रम अनवरत चल ही रहे थे। तीस, चालीस तथा पचास के दशक में शायद ही कोई संगीत-सम्मेलन हो जिसमें पं० ओम्कारनाथ जी ससम्मान आमन्त्रित न किये गये हों। अपने समय के सबसे महंगे, लोकप्रिय और संगीत के सम्मान के लिए संघर्ष करने वाले

कलाकार के रूप में पंडित जी की ख्याति देशभर में फैली हुई थी।

प्रायोगिक पक्ष के प्रबल प्रयोजक पंडित जी आचार्य भरत-रचित शास्त्र में अटूट आस्था रखते थे तथा मात्र प्रयोजक या पोंगा पंडित नहीं थे। लक्ष्य-लक्षण का ताल-मेल तथा उभय क्षेत्र में प्रभुत्व पंडितजी की विशेषता थी।

प्रयोजक और शास्त्रवेत्ता पंडितजी प्रखर वक्ता भी थे। समर्थ लेखक भी थे, बारीकियों से अवगत कराने वाले शिक्षक भी थे तथा कुशल प्रशासक भी थे, विशिष्ट वाग्गेयकार भी थे (प्रायः सत्तर से अधिक विविध राग-ताल में निबद्ध आप की रचनाएँ सुरक्षित है—कई आज प्राप्य नहीं हो रहीं) तथा सबसे पहले संगीत और संगीत-सेवी के हित-चिन्तक थे।

पण्डित जी ने अपने ज्ञान, अनुभव तथा चिन्तन से यह समझ लिया था कि, संगीत का भविष्य विश्वविद्या-लयों द्वारा दी जा रही शिक्षाव्यवस्था में सुरक्षित है। संगीत-विषयक शोध-कार्य विश्व-विद्यालयों में ही पनप सकता है। तत्कालीन कुलपति महोदय पं० गोविन्द मालवीय (महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र) के निमन्त्रण को स्वीकारते हुए 21 अगस्त 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में, 'श्री कला संगीत भारती' नाम से आरम्भ महाविद्यालय में संगीत एवम् ललित कलाओं (चित्रकला, मूर्तिकला) का पठन-पाठन पहली बार विश्वविद्यालय स्तर पर प्रारम्भ कराने में पंडित जी का अथक प्रयत्न रहा है, अमूल्य योगदान रहा है। संगीत जगत् की अपूर्व सेवा हुई है। इसी नवनिर्मित महाविद्यालय की कुछ प्रतिभाशालिनी छात्राओं को शिक्षित-दीक्षित करते हुए पंडितजी ने कवि-वर प्रसाद जी की दो अमर कृतियों 'कामायनी' और 'कामना' को संगीतबद्ध करते हुए उनका सफल मंचन करवाया।

पंडितजी मात्र संगीतकार नहीं थे। अपनी प्रखर बुद्धि, तीव्र मेधाशक्ति तथा अनवरत अध्ययन-प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ज्योतिष, आयुर्वेद, अनेक भाषाओं, बायो-केमिक दवाओं का ज्ञान स्वतः प्राप्त कर लिया था। प्रायः पचास वर्ष पूर्व टाईफायेड (उन दिनों यह असाध्य या महाकष्टसाध्य रोग समझा जाता था) से ग्रस्त इन पंक्तियों के लेखकको पंडित जी के बायोकेमिक ज्ञान ने ही नव-जीवन प्रदान किया था। कविता करने की क्षमता भी पंडितजी ने विकसित की थी। उदाहरणार्थ, 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' (महाकवि कालिदास की अमर नाटच-कृति) के पंडितजी द्वारा हो रहे (विभिन्न कारणों से यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका) हिन्दी अनुवाद की एक पंक्ति गुनगुनाते चलें! "शिकार करने आये थे–शिकार हो के चले।'

सात-आठ वर्षों तक 'श्री कला संगीत भारती' का संचालन-संवर्द्धन करने के पश्चात् उसे सुयोग्य, कर्मठ विद्याव्यासंगी तथा छात्रवत्सल शिक्षक-शिक्षिकाओं को सौंप कर सेवानिवृत्त हुए। विश्वविद्यालय के नियमा-नुसार साठ वर्ष पूरे होने पर पं० ओम्कारनाथजी 1957 में आचार्य पद से निवृत्त हुए। आचार्यत्त्व बना रहा। पहले से अधिक प्रवृत्त हो गये। लेखन-कार्य बढ़ गया। कार्यक्रमों के हेतु देश-विदेश में जाने के अवसरों में वृद्धि होती गई।

किन्तु शरीर आखिर शरीर है। उसकी एक सीमा है। वार्धक्य ने पंडितजी जैसे कसे हुए तनवाले तथा मँजे हुए मनवाले को नहीं छोड़ा। हृदय रोग से जर्जर हो ही चुके थे, पक्षाघात के हमले ने ओम्कारनाथ के गर्जन को फुसफुसाहट में बदल दिया। पहले वाराणसी, फिर दिल्ली फिर भडोंच, फिर सूरत और फिर बम्बई में एकाकी ओम्कारनाथ स्वास्थ्य-लाभ हेतु स्थानान्तरित होते रहे किन्तु, कोई लाभ नहीं हुआ। अन्ततः 29 दिसम्बर 1967 को 70 वर्ष की आयु में (10-10 वर्षों के सात-सात अध्यायों में विभक्त क्रिया-कलाप) बम्बई में ही आत्मज्योति परमज्योति में विलीन हो गई। नादतत्व के साधक पं० ओम्कारनाथजी नाद की ही भाँति अदृश्य किन्तु अमर हो गये।

अनेकानेक समाचार पत्रों ने इसे संगीत जगत् की अपूरणीय क्षति कहा। अनेकानेक नगरों में शोक -सभाएँ

आयोजित करते हुए श्रद्धांजलि समर्पित की गई। राजकीय (गुजरात राज्य सरकार) तथा राष्ट्रीय स्तर पर मरणोपरान्त सम्मान भी दिया गया। अभूतपूर्व कलाकार को अभूतपूर्व समादर और स्नेह मिला।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न क्षेत्रों में अखिल भारतीय क्षेत्र के विभिन्न महानुभावों ने भारत में जन्म लिया (महात्मा गाँधी, महामना जी, पं० जवाहर लाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी, पं० विष्णु दिगंबरजी, पं० भातखण्डे जी आदि) उनमें से एक पंडित जी भी थे। सबसे निराले, सबसे विचक्षण तथा सबसे अनूठे।

जातस्य ही ध्रुवो मृत्युं। जो आता है, चला जाता है। किन्तु कुछ फूल ऐसे होते है, जिनके नहीं रहने पर भी खुशबू मिटती नहीं। सत्य और अहिंसा का जो संदेश महात्मा गाँधीजी दे गये वह आज सवा सौ साल बाद भी नहीं मुलाया जा सकता। स्वामी विवेकानन्द के सर्व धर्म समभाव और विश्वबन्धुत्व के आह्वान को नहीं भुलाया जा सकता। संगीतोंद्धारक पं० विष्णु दिगम्बरजी की, त्याग और तपस्या से परिपूर्ण सांगीतिक साधना को नहीं भुलाया जा सकता। उसी प्रकार संगीतमार्तंड ने स्वर की शक्ति का, राग की रक्ति का, एवं भाव और भक्ति का जो संदेश संगीतप्रेमियों को सुनाया, समझाया वह भी कभी भुलाया नहीं जाएगा।

पंडितजी के शिष्य-प्रशिष्यों का, प्रशंसकों का, चाहने वालों का ही नहीं अपितु सभी संगीत-सेवियों का, संगीतानुरागियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि पू० पंडितजी के संदेश को सुनें-समझें, सुनाएँ-समझाएँ। उनके संदेश को भावी कलाकारों, कलासेवियों तथा कलाप्रेमियों में प्रणव-प्रसाद के रूप में वितरित करें। उनके जीवन भर की तपस्याजनित उपलब्धि को नई पीढ़ी में संक्रान्त करें।

महामानवों के प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होती है कि उनके बताये रास्ते पर चलें, आगे बढ़े। उनके आदेशों का पालन करें। उनके सन्देश को हमें संगीत-संसार में प्रसारित करना है—अग्रसारित करना है।

एक वर्ष बाद, 1997 में पू० पंडितजी की जन्म शती का वर्ष है। आज से ही संकल्प करें कि, पंडितजी के अभूतपूर्व योगदान को स्मरण रखते हुए उनको श्रद्धांजलि समर्पित करना है तथा उन समस्त कार्यों को आगे बढ़ाना है जिसकी प्रेरणा-मार्गदर्शन तथा थाती संगीत-सम्राट से मिली है।

□

संगीत को मैं ध्यान की बड़ी निकट अवस्था मानता हूँ। संगीत की खोज ही ध्यानियों की है जिन्होंने पहले अन्तर्नाद सुना है। उन्होंने ही फिर धीरे-धीरे वाद्यों पर उस ओंकार को बजाने की बाहर व्यवस्था की है। संगीत का जन्म ऋषियों और दृष्टाओं से हुआ है। हमारा तो एक वेद-साम वेद – संगीत का स्रोत है संगीत का ही मूल शास्त्र है पचास प्रतिशत लोगों को जीवन में जो अनूठे अनुभव होते हैं वे संगीत से होते हैं। इसलिए निश्चय ही संगीत का खूब उपयोग किया जाना चाहिए। क्योंकि बाहर का संगीत तुम्हारे भीतर के तारों को कम्पित कर सकता है। तुम अपने भीतर थोड़ा संगीत खोजो, थोड़ा अपने बाहर संगीत खोजों। तुम अपने भीतर थोड़ी सी लय खोजो और जहाँ भी तुम्हें लय की प्रतीति हो, साक्षात्कार हो, जानना कि परमात्मा के बहुत करीब हो।

सौजन्य—ओशो रजनीश

Kanth-Kuber, Kaaku-Kovid, Sangeet-Maart- and Pujya Pandit Omkaarnaath Ji Thaakur

(Dr. Pradeep Kumar Dixit)

Editor's Summary

Here, Dr. Dixit has given a brief account of the whole personality of Pt. Omkarnath Thakur, an eminent virtuoso and an incomparable personality of the music world. Our author, in his introductory start has said that this exposure will not prove much beneficial for those who have already come into direct contact with the glory of maestro's splendour. However, 'the article shall benefit to those listeners who could not listen to him, to those inquisitive/who could not understand the unity of raaga and rasa and to those thirsties whose thirsts left unfulfilled' says the author.

Dr. Dixit in his spirited and interesting style has revealed the underlying facts of Panditji's personality in twofold. On one hand, he has given a biographical sketch of Panditji with special features of his life-style and on the other hand, richness of his multiferious virtuosity.

•

The woole point of the discussion in this (in the reference of Raaga Vibodh) :—Music is a progressive science and art. It progresses with the taste and needs of the community. In Deshimusic, we can not always pretend to stick to the old orthodox theories and rules are bound to come in course of time, and we must be prepared to make room for them.

Courstesy—'A Comp. Study...' by Pt. Bhatkhande.

पटियाला घराना और ठुमरी

—डॉ० दीप्ति बंसल

भारत के शास्त्रीय संगीत की विकास-परम्परा में गुरु-शिष्य-परम्परा का विशेष स्थान है। भारत में समय-समय पर ऐसे संगीतज्ञ होते रहे हैं जिन्होंने अपनी कला-साधना से संगीत की उपासना की। इनकी कलागत शैली ने पारिवारिक परम्परा का रूप धारण कर लिया। इस पारिवारिक परम्परा से 'घराने' का निर्माण हुआ। अनेक वर्षों की परम्परा, उच्चकोटि के गुरु और कई पीढ़ियों की गुरु-शिष्य परम्परा से मिलकर ही एक घराना बनता है। घराना 'रीति' या 'शैली' का ही दूसरा नाम है। अनुकरण घराने का मूलभूत तत्त्व है। घराने के प्रवर्त्तक की गायन-वादन शैली उस घराने की प्रतीक बन जाती है। वस्तुतः घरानेदार गायकी हिन्दुस्तानी संगीत की निजी विशेषता है।

भारतीय समाज मुख्य रूप से पुरुष प्रधान रहा है। संभवतः इसीलिए हिन्दुस्तानी संगीत के विभिन्न घरानों की स्थापना भी वंशगत गायकों, वादकों और नर्तकों के आधार पर हुई है। वर्तमान युग में ख़याल गायन के कई घराने प्रचलित हैं, जैसे ग्वालियर घराना, किराना घराना, पटियाला घराना, आगरा घराना, जयपुर घराना आदि। ठुमरी विधा का सम्बन्ध प्राचीन काल से पेशेवर गायिकाओं व गणिकाओं से रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों से सम्बद्ध गायकी होने के कारण ही ठुमरी के घराने नहीं पाये जाते, अपितु उसकी शैलियाँ प्रचलित हैं। वस्तुतः ठुमरी गायकी का ख़याल गायन के विभिन्न घरानों से गहरा सम्बन्ध रहा है। ठुमरी जब अपनी विकास-प्रक्रिया से गुज़र कर एक स्वतन्त्र गायन-शैली-के रूप में प्रतिष्ठित हुई तो अनेक घरानेदार कलाकार इसकी ओर आकर्षित हुए। ठुमरी को एक लोकप्रिय गायन शैली के रूप में प्रतिष्ठित व प्रचारित करने में सादिक अली खाँ, भैया गनपतराव, मौजुद्दीन खाँ, महाराज बिंदादीन जैसे पुराने संगीतज्ञों का अपूर्व योगदान रहा है। ठुमरी की लोकप्रियता को देखते हुए अनेक ख़याल गायकों ने भी इसे अपनाया। किराना घराने के अब्दुल करीम खाँ, ग्वालियर घराने के शंकर राव पंडित, आगरा घराने के फैयाज़ खाँ, रामपुर घराने के मुश्ताक हुसैन खाँ और पटियाला घराने के बड़े गुलाम अली खाँ जैसे प्रतिष्ठित संगीतज्ञों ने ठुमरी गायकी को अपनाया और उसके विकास में योगदान दिया।

ठुमरी गायकी के क्षेत्र में पटियाला घराना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह घराना उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के कारण समस्त भारत में प्रसिद्ध हुआ। खाँ साहब ख़याल व ठुमरी, दोनों ही गायकियों में सिद्ध-हस्त थे। पटियाला घराना वस्तुतः दिल्ली का ही घराना रहा है। सन् 1857 में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण दिल्ली के कलाकारों का पूरा जमघट पंजाब की ओर रवाना हुआ और उन्होंने विशेष रूप से पटियाला रियासत में आश्रय प्राप्त किया। दिल्ली के प्रसिद्ध ख़याल गायक तानरस खाँ ने भी महाराज नरेन्द्र सिंह के पटियाला दरबार में शरण ली। तानरस खाँ के शिष्यों में कालू मियां, अली बख्श, नबी बख्श और फतेह अली प्रमुख रहे। अली बख्श और फतेह अली की जोड़ी 'अलिया-फत्तू' के नाम से देश भर में प्रसिद्ध रही। इन्हीं से पटियाला घराने का आरंभ हुआ। अलिया-फत्तू ने संगीत की तालीम दिल्ली के तानरस खाँ, ग्वालियर के हद्दू खाँ और जयपुर के कालू मियां, बहराम खाँ तथा मुबारक अली से प्राप्त की। इसीलिए इनकी गायकी में दिल्ली, ग्वालियर तथा जयपुर तीनों घरानों का सुन्दर मिश्रण रहा। पटियाला घराना मूलतः दिल्ली का घराना

होते हुए भी पंजाब की स्थानीय शैलियों से प्रभावित होने के कारण यह 'पंजाब का घराना' बन गया और पटियाला रियासत में पनपने के कारण यही 'पटियाला घराना' कहलाया।

पटियाला घराना अपनी रसिकता और तैयारी के लिए प्रसिद्ध है। इसका कारण यही हो सकता है कि इसमें दिल्ली, ग्वालियर और जयपुर घराने की विशेषताओं का संगम है। इस घराने की बंदिशें संक्षिप्त तथा कलापूर्ण होती हैं। राग की बढ़त चीज़ की बढ़त से की जाती है। आलाप, बोलआलाप, बोलतान तथा गमक का खूब प्रयोग होता है। इस घराने के गायक सरगमों का प्रयोग विभिन्न छन्दों में करते हैं। तानों की अद्भुत तैयारी यहाँ के गायकों की विशेषता है। अलंकारिक, वक्र तथा फिरत की तानों का प्रयोग बहुत चमत्कारपूर्ण ढंग से किया जाता है। गमक-अंग और अति द्रुत लय में संचार करने वाली सपाट तान से यह घराना अन्य घरानों से अलग पहचाना जाता है। इस घराने में तैयारी के साथ-साथ कोमलता भी दृष्टिगोचर होती है। खुले गले से आकार कहना इस घराने की विशेषता है। स्व० मुनव्वर अली खाँ ने इस विशेषता का श्रेय अपने बुजुर्गों को दिया है। उनके अनुसार साफ़ आकार कहना तथा गायन में शब्दों की अदायगी को महत्त्व देना उनके बाप-दादा की देन है[1]। पटियाला घराने की गायकी में पंजाब के टप्पे, सूफ़ी बानी, सिक्ख शब्द तथा कव्वाली का भी काफी प्रभाव दिखाई देता है। पटियाला की रसीली गायकी में ठुमरी जैसी श्रृंगारिक विधा के लिए विशिष्ट स्थान रहा। अलिया-फत्तू की रची हुई ठुमरियाँ अपनी कोमलता, रसीलेपन और टप्पे वाली तानों के लिए आज भी संगीत संसार में प्रसिद्ध हैं।[2] उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ ने ठुमरी की विशिष्ट शैली 'पंजाब-अंग' को प्रचलित किया।

पंजाब-अंग की ठुमरी—

ठुमरी विधा का जन्म लखनऊ दरबार में हुआ और वहीं से यह समस्त भारतवर्ष में लोकप्रिय हुई। पंजाब के कलाकारों ने अपनी अनोखी सूझ-बूझ, भावुकता और गले की सूक्ष्म हरकतों से इसे ऐसा चमत्कारिक रूप प्रदान किया कि पंजाब के ठुमरी-गायन ने अपनी विशिष्टताओं को लेकर पंजाबी-अंग की ठुमरी संज्ञा से अभिहित होकर स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त किया।

संगीतशास्त्रविद् स्व० पंडित दिलीप चन्द्र वेदी के अनुसार पंजाब-अंग की ठुमरी को वर्तमान स्वरूप देने वाले पंजाब क्षेत्र के सुप्रसिद्ध गायक अली बख्श कसूरी थे।[3] अली बख्श ने अपने जीवन का बहुत समय लखनऊ तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में व्यतीत किया जहाँ उन्होंने पूरब अंग की ठुमरी का ज्ञान महाराज बिंदादीन, कालिकाप्रसाद तथा ठाकुर नवाब अली खाँ से प्राप्त किया। पूरब की ठुमरी शैली से प्रेरित होकर उन्होंने ही सर्वप्रथम पंजाब के लोकगीतों के सहारे उसका अनुवाद पंजाब-अंग में किया था।[4] अली बख्श के पुत्रों-बड़े गुलाम अली खाँ और बरकत अली खाँ ने अपने पिता से प्राप्त ठुमरी गायन शैली को सूक्ष्म हरकतों, टप्पे-अंग की तानों और सरगम आदि से सँवार कर एक नवीन शैली को जन्म दिया जो पंजाब की अपनी विशेषता हो गई। यही शैली ठुमरी की 'पंजाब-अंग की शैली' के रूप से प्रतिष्ठित हुई।

बड़े गुलाम अली खाँ पंजाब-अंग की ठुमरी को पूरब अंग से सर्वथा भिन्न व स्वतन्त्र मानने को तैयार नहीं थे। संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में टेप की गई एक भेंटवार्ता में उन्होंने स्वतः स्वीकार किया था कि वस्तुतः ठुमरी का एक ही अंग है और वह है 'पूरब'।[5] उनके कथनानुसार पंजाब में ठुमरी कभी भी संगीत की विशिष्ट शैली के रूप में विकसित नहीं हुई अपितु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से वहाँ परम्परागत रूप में पूरब शैली की ही ठुमरी गाई जाती रही।[6] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूरब अंग की ठुमरी में पंजाब के लोकसंगीत का रंग देते हुए उसे वैचित्र्यपूर्ण बनाने से ही ठुमरी गान की पंजाबी शैली विकसित हुई है। आज, देखा जाए तो पंजाब-अंग की ठुमरियों में बंदिशें तो पूरब अंग की भाँति ब्रज, भोजपुरी आदि भाषाओं में रचित होती हैं परन्तु उनकी गायकी में पंजाबी लोक-

संगीत का प्रभाव रहता है। स्वर-वैचित्र्य, कण, खटका, मुर्की और टप्पा-शैली की छोटी-छोटी खटकेदार तानों का प्रयोग पंजाब-अंग की ठुमरी की विशेषता है। पंजाब-अंग की ठुमरी के गायक बोल-बनाव के अतिरिक्त ठुमरी को छोटी-छोटी तानों, बोलतानों, जमजमा आदि से सजाते हैं। इस अंग में बोल-बनाव की अपेक्षा स्वर-समूहों के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोगों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। फलस्वरूप इस शैली की ठुमरी में प्रायः स्वरों के शुद्ध, कोमल व तीव्र आदि के रूपों का क्रमशः एक के बाद एक का व्यवहार भी स्वतन्त्रतापूर्वक किया जाता है।[7] रागों का कुशल मिश्रण और गति में चपलता इस अंग की ठुमरी की विशेषताएँ हैं। बोलों की स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति के प्रति अवहेलना बरतने और अधिक रागों का मिश्रण करने के कारण पंजाब-अंग की ठुमरी में पूरब अंग के ठुमरी गान की भाँति स्थिरता व क्रमबद्धता नहीं दिखाई पड़ती। इस अंग की ठुमरी में पंजाब प्रदेश की हीर, माहिया, टप्पा, काफी आदि लोकधुनों व उनकी विशेषताओं का समावेश दिखाई देता है।

पटियाला घराने के कलाकार और ठुमरी

पटियाला घराने के अनेक कलाकार ठुमरी गायन में दक्ष रहे हैं। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ पटियाला घराने की गायकी के अग्रणी प्रतिनिधि थे। वे पंजाब अंग की ठुमरी शैली के आधार-स्तम्भ थे। ठुमरी गायन में उन्होंने जिस अद्भुत भावाभिव्यक्ति का परिचय दिया, उससे उनकी लोकप्रियता चरम शिखर पर पहुँच गई थी। जिस निराले ढंग से उन्होंने पंजाब अंग की ठुमरी गाई वैसी कोई न गा सका। खाँ साहब ने ठुमरी में पंजाब प्रदेश में गाए जाने वाले टप्पा, माहिया, सिंधी काफी, हीर इत्यादि लोकधुनों का रंग देकर उसे एक नई शैली में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपनी ठुमरी में पंजाब अंग के स्वर-वैचित्र्य और चमत्कार के साथ-साथ पूरब अंग के बोल-बनाव को भी कायम रखा। उनकी ठुमरी की खास विशेषता थी, टप्पा-अंग की तानों का प्रयोग। वे इतने सहज ढंग से टप्पा-अंग की जटिल व पेचीदा तानों का प्रयोग ठुमरी में करते थे कि ठुमरी के शब्द और भाव का सौन्दर्य भंग नहीं होता था।

बड़े गुलाम अली खाँ के ठुमरी-गायन की एक और विशेषता थी—सरगमों का प्रयोग। परन्तु ठुमरी गायन में सरगमों का प्रयोग केवल उन तक व उनकी शिष्य-परम्परा तक ही सीमित रहा, चूँकि अन्य ठुमरी गायक ऐसा करना भावपूर्ण ठुमरी गायकी के लिए हानिकारक समझते हैं।[8] खाँ साहब ने कहरवा और दादरा जैसी लोकगीत की तालों में ठुमरी गाने की नींव डाली। उनकी यह खासियत थी कि वे सभी प्रकार की लय-तालों में सहजता से गा लेते थे। उनकी गायी ठुमरियों का अवलोकन करें तो हमें इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। जैसे—पीलू की ठुमरी 'सैंया बोलो तनिक मोसे रहियो न जाए'[9] द्रुत दादरा ताल में भैरवी की ठुमरी 'प्रेम के फंदे में'[10] कहरवा ताल में और तिलककामोद की ठुमरी 'तन मन धन तोपे वारूँ ना'[11] दीपचंदी ताल में गायी गयी है।

खाँ साहब की कल्पनाशील और भावुक गायकी में जहाँ एक ओर शब्द और सुर का अद्भुत समन्वय था, वहीं दूसरी ओर सुरों के माध्यम से शब्दों की भावनाओं को मूर्त रूप देने की अद्भुत क्षमता भी थी। उन्होंने ठुमरी गायकी के विकास में न केवल योगदान दिया, बल्कि उसे सामान्य जनता के मध्य लोकप्रिय भी बनाया। उनके सुपुत्र स्व० मुनव्वर अली खाँ ने भी उन्हीं की ठुमरी शैली को अपनाया था। लक्ष्मीशंकर, निर्मला अरुण और परवीन सुलताना ने भी बड़े गुलाम अली खाँ की गायन शैली की विशेषताओं को अपनाया है।

बड़े गुलाम अली खाँ के अनुज बरकत अली खाँ भी पंजाब-अंग के ठुमरी-गायन में सिद्धहस्त थे। उनकी संवेदनशीलता और भावनाओं की गहराई को व्यक्त करने वाली आवाज और विशेषकर उनकी भावुक प्रकृति ठुमरी गायकी के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। पंजाब अंग और पूर्वी अंग ठुमरी का संतुलित मिश्रण उनके गायन को अधिक रसमय बना देता था। उनकी गायी हुई तिलकामोद की ठुमरी 'परदेसी बलम घर आजा'[12] उनकी गायकी का उत्कृष्ट

नमूना है। मध्य लय की रूपक ताल में गायी इस ठुमरी में मधुर बोल-बनाव, गमक तथा फिरत की तानों का सुन्दर प्रयोग देखते ही बनता है।

पटियाला घराने की अदाकारा हीरा देवी मिश्र ठुमरी की श्रेष्ठ गायिका थीं। उन्होंने पटियाला के अता खाँ साहब और बनारस के सरजू प्रसाद व प्रताप मिश्र से संगीत-शिक्षा प्राप्त की थी। ठुमरी' उहोंन्ने अपने पति कमल मिश्र से सीखी थी। पटियाला घराने की गायिका होने पर भी उनकी ठुमरी बनारस अंग की थी। मधुर स्वर-लगाव, सुन्दर बोल बनाव, चैनदारी, प्रभावशाली भावाभिव्यक्ति, मीड़ का कुशल प्रयोग और कहीं-कहीं टप्पा अंग की तान का प्रयोग उनकी गायकी की विशेषताऐं थीं। ये सभी विशेषताएँ उनकी रिकार्डिंग देश की ठुमरी 'मोरा सैंया बुलावे आधी रात'[13] में परिलक्षित होती हैं।

सुविख्यात गायिका निर्मला अरुण का नाम ठुमरी के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है। निर्मला अरुण ने संगीत की शिक्षा स्व० उस्ताद अता खाँ से प्राप्त की और बाद में उन्हीं के भतीजे स्व० उस्ताद अब्दुल रहमान खाँ से सीखा। निर्मला जी को पटियाला घराने की गायकी में महारत हासिल है। उनका ठुमरी-गायन बड़े गुलाम अली खाँ से प्रभावित है जो उनके आदर्श रहे हैं। बोल की अदायगी का ढंग उन्होंने खाँ साहब से ही लिया है। गमक, मुर्की व खटकों का काम और भावपूर्ण ढंग से बोलों का प्रस्तुतीकरण उनके गायन की मुख्य विशेषता है। उनकी गायकी तानों की चमत्कारिता से पूर्ण है जो कि पंजाब अंग की विशेषता है। कुछ आलोचकों का मत है कि डनके ठुमरी गायन में अलंकरणों का आधिक्य रहता है जबकि बड़े गुलाम अली खाँ के ठुमरी गायन में अलंकरणों का संतुलित प्रयोग पाया जाता था।[14] मिश्र शिवरंजनी की ठुमरी "रो रो नैन गँवाए सजना ना आए"[15] उनकी गायकी का उत्कृष्ट उदाहरण है। तानों का बाहुल्य, मुश्किल हरकतो का प्रयोग, तीनों सप्तकों में सुगमता से विचरण, बोल-बनाव की विविधता आदि विशेषताएँ इस ठुमरी में देखने को मिलती हैं। 'हाँ, हाय,राम' आदि स्तोभाक्षरों का प्रयोग भी इस ठुमरी में किया गया है।

पटियाला घराने की कुछ अन्य कलाकारों ने भी ठुमरी गायकी को अपनाया। इनमें स्व० अमानत अली, स्व० फतेह अली, स्व० नज़ाक़त अली, सलामत अली, पंडित जगदीश प्रसाद, अजय चक्रवर्ती आदि के नाम प्रमुख हैं। बड़े गुलाम अली खाँ की शिष्य परम्परा में वर्तमान युग में मीरा बनर्जी, ऐरन रॉय चौधरी, संध्या मुखर्जी के नाम डल्लेखनीय हैं।

'पटियाला घराना और ठुमरी' के उपर्युक्त अवलोकन के आधार पर ठुमरी की पंजाब शैली को पटियाला घराने की देन कहा जा सकता है। ठुमरी चाहे पूरब की हो या पंजाब की, पटियाला घराने के कलाकारों ने उसके विकास में अपना अप्रतिम योगदान दिया है। गायन की इस विधा को उन्होंने निश्चय ही समृद्ध किया है।

●

टिप्पणियाँ

1. मुनव्वर अली खाँ से एच० सी० वर्मा की बातचीत, महफ़िल कार्यक्रम में आकाशवाणी दिल्ली से 4.11.90 को प्रसारित (रकार्डिंग 15 मार्च, 1980 को की गई)।
2. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, संगीत में घराना, 'संगीत' अंक जनवरी-फरवरी 1982 पृ० 27।
3. गीता पैन्तल, 'पंजाब की संगीत परम्परा' 1988 पृ० 85.
4. सुशील कुमार चौबे, 'संगीत के घरानों की चर्चा' 1984, पृ० 26 1
5. शत्रुघ्न शुक्ल, 'ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ' 1983, पृ० 294

6. नैना देवी, ठुमरी गायकी, 'कला भारती ठुमरी सम्मेलन पत्रिका' दिसम्बर 1965, पृ० 66

7. शत्रुघ्न शुक्ल, 'ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ' 1983, पृ० 296

8. Petet Manuel, Thumri in Historical and Stylistic Perspectives 1989, P. 127, 128.

9. HMV STC 04B 7474 Supreme 10. Ibid Cassette.

11. HMV STC (HB) 7399 Supreme Cassette.

12. कोलम्बिया रिकॉर्ड 7 EP E 1253.

13. Thumriyan, TP ECSD 2748.

14. Peter Manuel Thumri in Historical and Stylistic Perspectives 1989, P. 89, 90.

15. Casoette AKAI KRS 90.

रस का नाम पहली बार जो आता है नाट्यशास्त्र में पहले ही अध्याय में, वह इस प्रकार की नाट्य के चार प्रमुख अंग हैं—पाठ्य का ऋग्वेद से, गीत का सामवेद से, अभिनय का यजुर्वेद से और रस का अथर्व से ग्रहण किया गया है। क्योंकि यह कहा है कि ब्रह्मा ने 'सस्मार चतुरो वेदाः', चारों वेदों का स्मरण किया और उन्हीं में से कुछ-कुछ तत्त्व लेकर पांचवां वेद बना दिया नाट्य का। रस का अथर्व से ग्रहण किया। हम जानते हैं कि वेद को जब हम त्रयी कहते हैं, तो अथर्व उसमें नहीं आता। तब अथर्व बाहर रह जाता हैं उससे। जब चार वेद कहते हैं, तब अथर्व आ जाता है। यह बात तो शास्त्रों में बहुत बार मिलती है कि किसी भी तत्त्व का जब निरूपण होता तो वह तीन में भी होता है और चार में भी। अभिनय चार भी कहे हैं और तीन भी कहे हैं। आंगिक, वाचिक, सात्विक, अभिनय की त्रयी है और आहार्य को जोड़ देने से चार प्रकार का अभिनय होता है।

सौजन्य—रस-सिद्धान्त, प्रेमलता शर्मा पृ० 16

Patiaala Gharaanaa And Thumari

(Dr. Deepti Bansal)

Editor's Summary

Dr. Deepti Bansal in the first part of her revealment has explained the main features of gharaanaa and further gone ahead with discussing it with reference to thumari. In this part of her hypothetical discussion, Dr. Bansal has pin-pointed that thumari could not get recognition on the name of performer as in case of Khayal and it was because of lady exponent generally associated with thumari. In the opinion of the author, our Indian society has been basically dominated by the men hence the lady virtuosi could not be recognised with their names prefixed with thumari.

In second part of her study, our author has given a whollistic details of Patiala ghaaraanaa-thumari with the narration of its geneis, historical development, critical approach to its form and style, all about eminent thumari performers of the Patiala gharana, etc.

•

All these shows that Hindustani music was going through wonderful changes and that were great artists in those Mohemedan times. I only wish Bhavabhatt had taken the trouble to carefully define or describe all these Upaanga-Raagas'.

Courstesy—'A Comp. Study...' by Pt. Bhatkhande

सूरदास और शास्त्रीय संगीत

—डॉ० मुकेश गर्ग

महाकवि सूरदास के काव्य की बात चले और संगती का जिक्र न आए, ऐसा शायद ही कभी होता हो। यों कबीर, मीरा, तुलसी, घनानंद और आधुनिक युग के निराला के संगीत-ज्ञान की चर्चा भी कानों में पड़ जाती है। पर, सूरदास इनमें सबसे आगे हैं।

कहा जाता है, सूरदास ऊँचे संगीतज्ञ थे। खाली संगीतज्ञ नहीं, बल्कि शास्त्रीय संगीतज्ञ थे। किसी ने उन्हें 'संगीत-शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता' कहा, तो किसी ने उन्हें 'शास्त्रीय संगीत में पारंगत' बतलाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो और भी बड़ी बात कह डाली। उन्होंने कहा—'सूरसागर में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी, इससे यह संगीत-प्रेमियों के लिए भी बड़ा भारी खजाना है।'

शुक्ल जी के उस कथन ने बड़ा गजब कर दिया। सूरदास को शास्त्रीय-संगीत का उस्ताद साबित करने की विद्वानों में मानो होड़ लग गई। सूर-काव्य के उस तथा-कथित खजाने में से ज्यादा से ज्यादा रत्न बटोर लेने की लालच में लोगों ने न जाने कैसी-कैसी बेसिर-पैर की बातें कह डालीं। आखिर शुक्ल जी जैसा आचार्य कह गया था न कि उसमें 'कोई राग या रागिनी छूटी न होगी।'

सूर के काव्य में कोई सत्तासी राग-रागिनियों के नामों का उल्लेख पाया जाता है। अब अगर सूरसागर में कोई राग-रागिनी छूटी न होगी तो मान लेना पड़ेगा कि सूर के जमाने में सिर्फ सत्तासी राग-रागिनियाँ गाई-बजाई जाती थीं। पर सच्चाई इसमें है कहाँ? पन्द्रहवीं सदी के ग्रन्थ 'संगीतराज' को ही उठाकर देख लें तो इस दावे का खोखलापन सामने आ जाएगा। महाराणा कुम्भा-रचित संगीत का यह महत्त्पूर्ण ग्रन्थ सूर के जन्म से कुछ बरस पहले ही लिखा गया था। अकेले इसी ग्रन्थ में कोई तीन सौ से ऊपर रागों का जिक्र आया है।

फिर, जिन सत्तासी राग-रागिनियों का उल्लेख मौजूदा सूरसागर में मिलता है, उन सभी रागों को सूर-दास खुद गाते होंगे, हमें तो इसमें भी शंका है। राग के कुछ नियम होते हैं, उन्हें बरतने के कुछ बन्धन होते हैं। गाने-बजाने में इन नियमों को कठोरता-पूर्वक निभाना सूर के जमाने में भी जरूरी समझा जाता था। राग के इस जटिल व्याकरण को समझने और उसके हिसाब से राग को सहजतापूर्वक गा लेने की क्षमता हासिल करने के लिए भारी रियाज और पूरे समर्पण की जरूरत पड़ती है। यही वजह है कि अच्छे-अच्छे उस्ताद भी अपना सारा जीवन लगा देने के बावजूद बीस-पच्चीस रागों से ज्यादा अपने कब्जे में नहीं कर पाते। सूरदास अगर इन सत्तासी राग-रागिनियों को गाते रहे होते हो निश्चित रूप से रागदारी के रियाज में ही उनकी सारी जिन्दगी खप गई होती।

इसका मतलब यह कत्तई नहीं कि सूरदास अच्छे गवैये नहीं थे। वह थे। पर उससे भी ज्यादा वह कवि थे, और कवि से भी ज्यादा भक्त थे। भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति के लिए सूर में भाषा की अद्भुत सामर्थ्य थी। भक्ति और उसके बहाने जीवन के मार्मिक पहलुओं का उद्घाटन मुख्य उद्देश्य होने की वजह से सूर न तो काव्य के शास्त्रीय बन्धनों में बँधे, और न उन नियमों को जानने की उन्हें फुरसतही थी। आत्मानुभूति के आवेग-क्षणों की अभिव्यक्ति ही उनका काव्य है। जो कवि काव्य-रचना के आम नियमों तक की परवाह नहीं करता, जो

कविता में बाहरी शिल्प के स्थान पर भाव को प्रधानता देता है, जिसका पूरा काव्य लोकोन्मुखता की जीती-जागती मिसाल है, ऐसा कवि एक तरफ तो राग के नीरस शास्त्रीय बन्धनों में बँधकर रहे, और दूसरी तरफ अनुभूति की अखंडता बनाए रखते हुए अद्वितीय काव्य-रचना करता रहे, यह कैसे मुमकिन हो सकता है ? एक ओर लोक-हृदय में लीन करने वाली भाव-प्रवणता और दूसरी ओर उस तल्लीनता को पग-पग पर तोड़ने वाली राग की दरबारी नियम-बद्धता, एक ओर हृदय की मुक्तावस्था और दूसरी ओर हृदय को जकड़ देने वाली संगीत की शास्त्रीयता—सूरदास इन दो नावों में पाँव रखते रहे होंगे, इसे स्वीकार करना कला और काव्य की रचना-प्रक्रिया से अनभिज्ञता प्रकट करना है । सूर पदों की रचना करते थे और उन्हें भावानुकूल स्वरावली में गाते थे । यह स्वरावली सम्भव है कभी-कभी राग-विशेष की स्वरावली होती हो । पर, निश्चय ही यह शास्त्रीय बन्धनों से परे स्वरों की ऐसी बंदिश और गायन-शैली होती होगी जिसके केन्द्र में अनुभूति रहती हो । दरबार में गाए जाने वाले 'ध्रुवपद' की गायकी से भिन्न इस शैली को 'विष्णुपद' कहकर पुकारा जाता था । इसकी पुष्टि वार्तासाहित्य से भी होती है ।

दरबार की विलासी और चमत्कार-प्रिय मानसिकता को तुष्ट करने वाले शास्त्रीय संगीत से सूर के संगीत की तुलना करना भारी भूल है । उनके कला-संसार के प्रति यह हमारी अधकचरी समझ का परिणाम है । सूर-काव्य की प्रकृति इस बात की गवाही देती है कि लोकोन्मुखी भाषा और लोक की भाव-सम्पदा का सम्मान करने वाले इस कवि की संगीत सम्बन्धी अभिरुचि भी लोकाश्रयी रही होगी । कोई कला अपने युग से स्वतन्त्र नहीं होती । सूर के युग में लोक-संगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक स्वर के लगाव और लय-प्रयोग का ढंग करीब-करीब वैसा ही रहा होगा, जैसा तत्कालीन ध्रुवपद-शैली में था । सूर भी उसी तरह गाते होंगे । लेकिन, स्वर-लय-प्रयोग की यह समानता एक बात है और सूर की गायकी को शास्त्रीय गायकी मानना बिलकुल दूसरी बात ।

नाथद्वारा की कीर्तन परम्परा में अष्टछाप के बाद और भी अनेक कवि और गवैये होते रहे हैं । हो सकता है, कुछ रागों की जानकारी सूरदास को वाकई रही हो और उनके अधिकांश पदों को बाद के इन कीर्तनकारों ने अपनी रुचि के अनुकूल रागों में बाँधकर गाना चालू कर दिया हो और फिर वही राग उन पदों पर अंकित हो गए हों ।

आज जो बल्लभ-संप्रदाय की कीर्तन-परम्परा मिलती है, उसमें पदों को उनके ऊपर अंकित रागों में ही बाँधकर गाया जाता है और दावा किया जाता है कि यही विशुद्ध पुष्टिमार्गीय संगीत है । ध्यान देने की बात है कि इन रागों में से ज्यादातर रागों के रूप वही होते हैं जिन्हें आज के शास्त्रीय संगीत में मान्यता मिली हुई है । जब कि मजेदार बात यह है कि सूर के जमाने से अब तक रागों के स्वरूप ही नहीं, उनके ठाठ तक बदल गए हैं ।

आचार्य बृहस्पति ने सूर के समकालीन संगीत-शास्त्री पुंडरीक द्वारा बताए गए राग-स्वरूपों को आधार मानकर सूर के और आज के जमाने के रागों में आए गंभीर परिवर्तनों का कुछ जिक्र किया है । उन्हीं के शब्दों में—'सूरदास के युग में तोड़ी राग वर्तमान भैरवी ठाठ में गाया जाता था, अतः उसका रूप वर्तमान बिलासखानी तोड़ी से मिलता-जुलता होना चाहिए ।···सूरदास जी की 'गूजरी' भी भैरवी ठाठ में है, पंचम स्वर-रहित वर्तमान विलासखानी सूरदास जी की 'गूजरी' हो सकती है । पुंडरीक ने जिस कल्याण ठाठ का वर्णन किया है वह···वर्तमान तोड़ी ठाठ के ऋषभ को चढ़ा देने से बनता है सूरदास जी का 'मारवा' भैरव ठाठ में गाया जाता था । वर्तमान मारवा ठाठ की चर्चा तो वेंकटमखी ने सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में की है । सूरदास जी के श्री, मालश्री और भैरवी आधुनिक काफी ठाठ में हैं, परन्तु आज 'श्री' पूर्वी ठाठ में, 'मालश्री' कल्याण ठाठ में और 'भैरवी' भैरवी ठाठ में है ।''

आचार्य बृहस्पति-द्वारा उद्घाटित इन तथ्यों को देखते हुए वल्लभ-संप्रदाय की कीर्तन-परम्परा का वर्तमान स्वरूप पूरी तरह संदेह के घेरे में आ जाता है ।

जहाँ तक सूर-काव्य में संगीत की पारिभाषिक शब्दावली के उल्लेख का सवाल है, उससे बस इतना ही प्रकट होता है कि सूर बहुश्रुत थे और संगीत के शास्त्रीय शब्दों से भी परिचित थे। यह जरूरी नहीं कि वह उन सभी के मर्म से भी परिचित हों। हाँ, कुछ जगह इन शब्दों का प्रयोग जरूर सटीक दिखाई देता है। लेकिन ज्यादातर तो ऐसा लगता है, मानो इन का प्रयोग सिर्फ नाम गिनवाने के लिए हुआ है।

इन तमाम बातों पर विचार करने से यही निष्कर्ष सामने आता है कि सूरदास का सम्बन्ध शास्त्रीय संगीत से वैसा बिलकुल नहीं था, जैसा कुछ समालोचकों और हवेली संगीत के गायकों ने मान लिया है। बेशक, वे बहुत अच्छे गायक थे। पर उसी तरह, जैसे आज कई गीतकार अच्छे कंठ और स्वाभाविक प्रतिभा के बल पर अच्छा गा लेते हैं और इस तरह अपने गीतों को ज्यादा मार्मिक बनाकर श्रोताओं के दिलों पर शासन करने लगते हैं। हो सकता है, सूरदास इससे भी कुछ ज्यादा संगीत के जानकार रहे हों। पर इतने भी ज्यादा नहीं कि उन्हें शास्त्रीय-संगीत का उस्ताद मान लिया जाए।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्मा भवत्युत्सव
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

अर्थात्—(कण्व ऋषि आश्रम के वृक्षों से कह रहे हैं) जो शकुन्तला जल से तुम्हारा रोचन किये बिना कभी भी जल तक नहीं पीती थी, जो पत्र-पुष्पों के बने हुए आभूषणों की प्रिय—अनुरागिणी होते हुए भी स्नेह से तुम्हारे कोमल पत्तों तक को भी नहीं तोड़ती थी और जो तुम्हारे पहले-पहले फूल निकलने के समय अनेक उत्सव एवं आनन्द मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। आप लोग सभी उसे जाने की अनुमति दीजिये।

—कालिदासकृत अभिज्ञान शाकुन्तलम् से

Surdaas And Shaastriya Sangeet

(Dr. Mukesh Garg)

Editor's Summary

After going through the texts of Surdaas and visualising the presence of raaga-taala's names herein, some scholars have accepted Surdaasa as a great musician of his time. But Dr. Garg has very logically justified that it is unfactual and rather a misleading deduction.

In his refutation, our author has categorically pin-pointed the reasons for the misleading conclusions and further discussed the real facts in this context. Dr. Garg in his discussion has encompassed the analysis of Surdaasa's personality; essence of classical music and its disassociation with a personality like Surdaasa; some of the authentic statements given by the modern scholars like Achaarya Brihaspati, etc. Although in the last part of the article, Dr. Garg has accepted Surdaasa a very good singer but defied him to be an accomplished musician (ustaad of classical music).

He (J-krishnamurty) publically accepted the role of the World-teacher and desolved his parent organisation, the order of the star in the East, in 1929 and declared that, 'thruth is a pathless land' and truth can only be perceived directly, not through any mediator, however high he concluded that, as far as the discovery of Truth is concerned, it is absolutely an individual matter and no organisation, religious or other wise, can be of any real help.

Courstesy—The Vision of J. Krishnamurty by R. K. Shringi.

वाद्यों के वर्गीकरण के अन्तर्गत 'वितत' शब्द का प्रयोग

—डॉ० पुष्पा बसु

'नाद' स्वर का आधार है। प्राचीन गन्थों में भी स्वर आदि को समझने से पूर्व 'नाद' की व्याख्या की गई है। 'नाद' शब्द का प्रयोग दो रूपों में हुआ है। प्रथम उसके व्यापक अर्थ में और द्वितीय संकुचित अर्थ में। आज हम जिस अर्थ में 'नाद' को लेते हैं, वह उसका संकुचित अर्थ है। किन्तु प्राचीन-ग्रन्थों में उसके व्यापक अर्थ को लिया गया है। 'नाद' के व्यापक अर्थ में सभी प्रकार की ध्वनियों का समावेश हो जाता है। चाहे वे संगीतोपयोगी हों या न हों, अर्थात रंजक हो या कर्ण कटु। परन्तु संगीत में नाद के दो भेद मानें गये हैं—आहत व अनाहत। 'आहत' जिसे सुन सकते हैं, समझ सकते हैं, तथा व्यवहार में ला सकते हैं। 'अनाहत' नाद स्थूल तथा भौतिक नहीं है। सामान्य जन उसे अपनी इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं कर सकता। वह योगी जनों को समाधि में सुनाई पड़ता है, तथा इन्द्रियातीत है। संगीत में आहत नाद का ही प्रयोग होता है, और यही आहत नाद अपनी पाँच ध्वनियों के रूप में आता है जिन्हें संगीतात्मक ध्वनियाँ कहते हैं। नारदकृत 'संगीत-मकरन्द' के अनुसार—

अनाहतः आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्र,
सोऽप्याहतः पञ्चविधो नादस्तु परिकीर्तितः।
नखवायुजचर्माणि लोहशारीरजास्तथा ॥७॥
[संगीत मकरन्द, पृ० 5]

इस प्रकार यह पाँच संगीतात्मक ध्वनियाँ नखज, वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज होती हैं। वीणा आदि तंत्रवाद्य नखज हैं, वेणु आदि वायुज हैं, मृदंग आदि चर्मज हैं, मंजीरा आदि लोहज तथा कंठ की ध्वनि शरीरज होती है यथा— 1. वीणा या नखज 2. वंशी या वायुजाः 3. मृदंग या चर्मजाः 4. ताल या लोहजाः ५. शरीरजा इतिनादा पन्चवर्तन्ते। (संगीतचूणामणि पृष्ट 69) इन्हीं पाँच प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्यानि' कहा गया है। इनमें एक प्राकृतिक अर्थात ईश्वर द्वारा तथा अन्य चार प्रकार के वाद्य मानव द्वारा निर्मित हैं। 'एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकम्' अन्य चतुर्विधं मनुष्यनिर्मितं चेति पंचप्रकारा महावाद्यानाम्'। (संगीत चूड़ामणि, पृष्ठ 69)।

भरत कोष में भी इन्हीं पाँच ध्वनियों का वर्णन है। कुछ ग्रन्थकारों ने इन ध्वनियों को चार या तीन प्रकार का भी माना है। परन्तु कोहल के अनुसार पाँच ही हैं। यथा—पंचधाच चतुर्धा च त्रिविधं च मतेन्मते।

कोहलस्य मते ख्यातं पंचधा वाद्यमेव च ॥ (संगीत चूणामणि पृष्ट 69) महर्षि भरत एवं दत्तिल ने वाद्यों के चार भेद माने हैं—तत अवनद्ध, घन, सुषिर। यथा—

भरतेन वाद्यं चतुर्विधं प्रोक्तम्
दत्तिलेन तु अवनद्धं ततं घनं सुषिरं चेति चतुर्विधं वाद्यं कीर्त्तितम्।

नारद ने इन की संख्या तीन मानी है। अवनद्ध, तत एवं घन। इन्होंने सुषिर एवं कंठ ध्वनि का नाम नहीं लिया है।

भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के मतों का अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है, कि अधिकांश ने वाद्य-ध्वनियों के चार ही प्रकार माने हैं। जिन्होंने कंठ-ध्वनि को भी वाद्य-ध्वनि के अन्तर्गत माना है, उन्होंने कुल संख्या पाँच मानी है, और जिन्होंने कंठ-ध्वनि को पृथक रक्खा है, उनके अनुसार वाद्यों की ध्वनियाँ चार ही हैं। जिन्होंने तीन ही ध्वनियाँ मानी हैं, उन्होंने चौथी न मानने का स्पष्टीकरण नहीं किया है। उपनिषद एवं पुराण में कहीं-कहीं अनेक ध्वनियों का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनका उद्देश्य वाद्यों का वर्गीकरण नहीं हो सकता। ध्यान पूर्वक अवलोकन करने से ऐसा प्रतीत होता है, कि समस्त नाद-भेद नाद

वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण में समाहित मिलते हैं। प्राचीन काल में भी वाद्यों का पर्याप्त विकास हो चुका था। उनके विकसित रूपों के अवलोकन से महर्षि भरत का वर्गीकरण वैज्ञानिक एवं उचित प्रतीत होता है—

ततचैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वित्॥
(भ० ना० शास्त्र 28/1)

इस प्रकार तत, अवनद्ध, घन, सुषिर क्रमशः तंत्री वाद्य, पुष्कर वाद्य, ताल वाद्य एवं वंशी वाद्य हैं। महर्षि के उक्त वचनों से यह भी संकेत मिलता है, कि उस समय समस्त वाद्यों को आतोद्य भी कहा जाता था। बाल्मीकि, तथा कालिदास ने अपने साहित्य में 'बहुवाद्य' सूचक के रूप में 'तूर्य' शब्द का प्रयोग किया है। महाभारत में भी अनेक वाद्य बनने के संदर्भ से तूर्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। पाली-साहित्य में 'तुरिय' शब्द से वृन्दवादन का संकेत प्राप्त होता है।

'विमान-वन्धु' में तुरिय पंचांगिक के अन्तर्गत पाँच प्रकार के वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्हें आतत्, वितत, घन एवं सुषिर कहा गया है।

महर्षि भरत द्वारा प्रतिपादित वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण को ही परवर्ती आचार्यों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। वाद्यों के वर्गीकरण के दो हजार वर्ष के इतिहास में प्रमुख रूप से दो परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं।

1. प्रथम वितत शब्द का अवनद्ध के स्थान पर प्रयोग।
2. ततावनद्ध नाम से एक नवीन वर्गीकरण।

वितत शब्द का प्रयोग प्राचीन-ग्रन्थों में कहीं नहीं प्राप्त होता। इस संज्ञा का प्रयोग महर्षि भरत, शार्ङ्गदेव किसी ने भी नहीं किया है। परन्तु मध्यकाल में अर्थात् तानसेन और उसके बाद के कलाकारों द्वारा विशेष रूप से यह शब्द प्रचारित हुआ है। तानसेन की कुछ रचनाओं में तत, वितत, घन, सुषिर नाम से वाद्यों का वर्गीकरण प्राप्त होता है। यथा—

(क) नाद नगर बसायो सुरपति, महल छायो उनचास
कोट तान अच्छर विश्राम पायो।
गीत छन्द तत वितत घन शिखर कंचन ताल कें,
किवाण आलाप ताली।
हीरा पे थाट नग लगे बरज जंजीर त्रेवट कुंजी छिपायो।
तार लगे सब साज के सो तत ही तुम जान।

(ख) तत को पहले कहत है, वितत दूसरो जान।
तीजो घन चौथे शिखर तानसेन परमान।
तार लगो सब साज के सो तत ही तुम जान।
चरम मढ्यो जाको मुखर वितत सु कहे बखान।
कास ताल के आदि दे घन जिय जानहु मीत।
तानसेन संगीत रस बाजत सिखर पुनीत।

(ग) आनन्द भयो आज विजय घर-घर मंगलचार।
अनेक गज-तुरंग साजे, नौबत नगाड़े बाजे, गज तुरंग साजे सवार।
तत वितत घन शिखर नाना विधि बाजत सुरपति के द्वार।
ब्रह्म वेद पढ़े नारद मुनि गावै राजा रामचन्द्र के जाके वार।
तानसेन कहे सुनो साह अकबर दशहरा सुफल भई तिथि वार।

उपर्युक्त रचनाओं में कही भी अवनद्ध शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है। 'वितत' शब्द ही अवनद्ध के स्थान पर आया है। क्योंकि 'चरम मढ्यो जाके मुखर वितत सु कहे बखान' से यह स्पष्ट हो जाता है, कि प्राचीन ग्रन्थों में जिसे अवनद्ध, आनद्ध या नद्ध-वाद्य कहा गया है, उसे ही तानसेन ने 'वितत' की संज्ञा प्रदान की है।

यद्यपि तानसेन की रचनाओं की पृष्ठभूमि का शास्त्रीय आधार वस्तुतः 'संगीत रत्नाकर ही है। किन्तु संगीत रत्नाकर में 'वितत' शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द कैसे और कहाँ से आया, यह विचारणीय है। इस शब्द का प्रयोग दो स्थानों पर और प्राप्त होता है।

जैन सूत्रों में अवनद्ध के स्थान पर 'वितत' शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। वाचनाचार्य सुधाकलश द्वारा रचित 'संगीतोपनिषद्सारोद्धार' की भूमिका में वाद्यों का वर्गीकरण 'तत, वितत, घन, सुषिर' के नाम से हुआ है।

'संगीत चूणामणि' जो कि तानसेन से पूर्व रचित ग्रन्थ है, उसमें भी अवनद्ध वाद्यों के लिये वितत शब्द का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। यथा—

ततं च विततं चैव घनं सुषिरमेव च।
गानं चैव तु पंचैतत् पंच शब्दाः प्रकीर्तिताः ॥1॥
ततं च तन्त्रितं विद्यात् विततं मुखवादनम्।
घनं च कास्यं तालादि तु सुषिर वायुपूरितं ॥2॥
[संगीत चूड़ामणि, पृष्ठ 69]

इसके अनुसार तत, सुषिर, वितत, घन और गान ये पाँच प्रकार के शब्द हैं। तन्त्री-वाद्य को तत् तथा जिन वाद्यों का मुख मढ़ा हो, उन्हें वितत समझना चाहिये। काँस्य तालादि घन वाद्य हैं और वायु भर कर बजाने वाले वाद्यों को सुषिर वाद्य कहते हैं।

'संगीत चूड़ामणि' के वितत शब्द के उपर्युक्त प्रयोगों में पाली साहित्य के 'विमानवत्थु तुरिय' (वृन्द-वादन) के अन्तर्गत जिन पाँच प्रकार के वाद्य-वर्गीकरण का नामोल्लेख मिलता है, उसमें तत को आतत तथा अवनद्ध को वितत की संज्ञा दी गई है। इसका तात्पर्य यह निकाला जा सकता है, कि वितत शब्द पाली भाषा से आया है, और बाद में गायकों तथा परवर्ती हिन्दी साहित्यकारों ने इसे अपना लिया। कभी-कभी कुछ शब्द सरल-ध्वनि होने के कारण आसानी से शब्द-योजना में बैठ जाते हैं और जिन शब्दों में यह विशेषता होती है, वह शीघ्र ही प्रचलित भी हो जाते हैं। 'वितत' शब्द भी कुछ इसी प्रकार का है। तत, वितत, घन, सुषिर की शब्द योजना को सुगमता से किसी पंक्ति में बिठाया जा सकता है। वितत के स्थान पर यदि अवनद्ध शब्द का प्रयोग तुक-बन्दी में करना हो तो बौद्धिक परिश्रम की आवश्यकता होगी। संगीतज्ञ हर समय भाषा की ओर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दे पाता। वह प्रायः अपनी विषय-वस्तु का ध्यान रखते हुए, सुगम शब्द-योजना द्वारा अपनी पंक्ति पूर्ण करना चाहता है।

मध्ययुग में इस प्रकार की दो धारायें प्रचलित हुई। प्रथम, संगीत के संस्कृत-ग्रन्थों में जहाँ महर्षि भरत की परम्परा का परिपालन हुआ। दूसरा, कलाकारों और बोल-चाल की भाषा में जहाँ अवनद्ध के स्थान पर वितत शब्द का प्रयोग हुआ। तानसेन के पूर्ववर्ती कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने ग्रन्थ 'पद्मावत' में भी इस शब्दका प्रयोग किया है :—

तत वितत सिघर घन तारा, पाँचो शब्द होई झनकारा।7।
[पद्मावत पृष्ठ 687]

स्व० डा० लालमणि जी मिश्र के अनुसार 'वितत' शब्द मूल पाली से चलकर प्राकृत तथा अपभ्रंश से होता हुआ मध्य युग की हिन्दी में आया है। हिन्दी और उर्दू पृथक भाषायें हो जाने से हिन्दी का सम्पर्क संस्कृत से अधिक बढ़ा। इसके फलस्वरूप पुनः अवनद्ध शब्द वितत के स्थान पर प्रचलित हो गया। आधुनिक काल आते-आते कुछ सीधे कला-मर्मज्ञों द्वारा सामान्य स्तर की पुस्तकें लिखने वाले लेखकों ने यह सोचा कि तत, वितत, अवनद्ध, घन, सुषिर यह पाँच शब्द हैं, किन्तु प्रमुख रूप से वर्गीकरण चार ही प्रकार के हैं। अतः तत वितत का मेल आसानी से बैठने के कारण उन लोगों के अन्दर एक नवीन कल्पना का सूत्रपात हुआ। उन्होंने यह कहना प्रारम्भ किया कि तत वाद्यों का तात्पर्य उन तन्त्री वाद्यों से है, जो मिजराब, जवा आदि के प्रहार से बजाये जाते हैं, जैसे सितार, सरोद, वीणा आदि। वितत के अन्तर्गत वे सभी तन्त्री वाद्य आते हैं, जिनका वादन गजया कमानी के घर्षण से किया जाता है, जैसे सारंगी, वायलिन, दिल-रूबा आदि। शेष के लक्षण प्राचीन ही है। इस भ्रामक धारणा का प्रचार अभी भी हैं। वर्तमान काल में हाई स्कूल, इन्टरमीडियेट तथा संगीत की प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रमानुसार जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं उन सब में वाद्यों का यही वर्गीकरण प्राप्त होता है। वितत को तत का ही एक भाग मानकर उसका विभाजन तत के अन्तर्गत ही कर दिया गया है किन्तु पीछे दिये गये उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि 'वितत' शब्द सदैव ही अवनद्ध वर्ग के वाद्यों के लिते प्रयुक्त हुआ है। इसलिये वितत को तत का एक भाग मानने का कोई आधार नहीं है। वास्तव में वाद्यों का चतुर्विध वर्गीकरण जो तत अवनद्ध-घन-सुषिर के नाम से हुआ हैं, वह प्राचीन है। इसकी प्रामाणिकता का आधार महर्षि भरत का 'नाट्य-शास्त्र' हैं। वैज्ञानिकता की दृष्टि से भी यही वर्गीकरण उचित जान पड़ता है।

Use of The Term Vitat Under The Classification of Musical Instruments

(Dr. Pushpa Basu)

Editor's Summary

Now a days vitat is used for the string instruments which are played with bow viz. Saarangi, violin etc, and come under the main division of musical instruments i. e. Tata, vitata, Awanaddha, Ghan and Sushir. Dr. Pushpa Basu has gone deep into the genesis and historical background of the classification of musical instruments and reached to this conclusion that vitat has erroneously been adopted by some subsequent authors. Dr. Basu has tried to investigate the eventualities under which 'vitata' started to be used for bowing instruments. In the opinion of our author vitata is not a new term for musical world. In medieval classification of musical instruments, vitata was used for percussion instruments. Dr. Basu has logically reached to the conclusion that reclassification of musical instruments was effected by Deshi tradition of music and then only vitata was used for the bowing instruments. Dr. Lalmani Mishra is also of the same opinion, says the author.

◘

Quite like a musical scale. the raaga is made up of musical notes called in Indian music shadja rishabha, gaandhaara, madhyama, panchama, dhaiwata and nishaada which are represented by the symbols sa, ri, ga, ma, pa, dha, ni respectively. But very raaga has its own special characterstics. One has to reckon which is the life note (jeeva-svara), on what note to start (graha), with what note to end a musical phrase (nyaasa), what note to use sparingly (alpatva), what note to use profusely (bahutva), and to what note embelishments (gamaka) are to be applied.

Courtesy—'The Concept of Raaga...' by S. Ramnathan

'अखियाँ हरिदरसन की प्यासी'

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा

मानव-मन रूपाकांक्षी है, मानव-जीवन रूपदर्शी है। वास्तव में जगत् में रूप ही सब कुछ है—जगत् रूप ही तो है, जीवन रूप ही तो है, प्रकृति, व्यक्ति रूप ही तो है। पुरुष जब व्यक्त होता है, अभिव्यक्त होता है, रूप ग्रहण करता है तभी तो जगत् की सृष्टि होती है। सृष्टि की रचना होती है। रूप के बिना सृष्टि कैसी ? व्यक्तित्व के बिना जगत् कैसा ? जगत् तो अभिव्यक्ति यानी अभिव्यक्तिकरण ही है पुरुष का।

तो, इस सृष्टि और जगत् के मूल में रूप ही है, रूप ग्रहण करने की आकांक्षा ही है, रूप का स्वाद लेने की सूक्ष्म वासना ही है। वास्तव में रूप से ही रूप का स्वाद लिया जा सकता है—अरूप रूप का स्वाद क्या लेगा—अरूप तो वास्तव में किसी भी वस्तु का, किसी भी तरह का स्वाद ले ही नहीं सकता। रूप वाले ही रूपवान् का स्वाद ले सकते हैं।

यह शरीर भी तो रूप ही है—किसी भाव, किसी संस्कार, किसी जीवन-ऊर्जा, किसी जीवन-कम्पन, किसी चैतन्य का रूपीकरण। तो हमारा शरीर वस्तुतः अंततः किसी भाव-सत्ता का व्यक्तिकरण ही है, रूपीकरण ही है। और इस शरीर में सबसे प्रमुख स्थान आँखों का है—सबसे ऊँचा स्थान। नाक भी नीचे, जिह्वा भी नीचे, स्पर्शेन्द्रिय भी नीचे। शरीर का मुख्य भाग, सर्वोच्च भाग सिर-मस्तक और मस्तक के बीच में दो देदीव्यमान आँखें—जैसे अनन्त आकाश में दीप्त-भास्वर सूर्य-चन्द्र।

आँखें इसलिए इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि ये रूप का, दृश्य का, आकृति के दर्शन-परिज्ञान, परिचयन-स्वादन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। जीवन की, जगत् की आधारभूता हैं ये आँखें—आँखें यदि छीन ली जायें या हटा दी जायें तो फिर जगत् या जीवन अपना स्वादन-सुख खो देगा। इसीलिए कहा गया—'आँख है तो जहान है' आँखों से ही जगत् है, सृष्टि है, संसार है।

जीवन में रूप का ही महत्त्व है, जगत् में दृश्य का ही महत्व है और इन रूपों और दृश्यों का अवलोकन नेत्रों द्वारा ही संभव है इसीलिए जीवन-जगत् या शरीर-मन के लिए नेत्रों की अनिवार्यता निस्सन्दिग्ध है, अपरिहार्यता निर्विवादित है।

पंचेन्द्रियों में आँखों का ही प्रथम स्थान है। और इन्द्रियों के आकर्षणों में रूप का आकर्षण सर्वप्रथम है, सर्वोपरि है। इसके बाद ही शब्द, रस, गंध, स्पर्श आते हैं। रूपास्वादन के बाद ही शब्द-रस आते हैं तब गंध-स्पर्श।

हम मूलतः रूप के दीवाने हैं—उसके पीछे पागल। रूप हमको बरबस आकृष्ट करता है—रूप से ही हम रमते हैं। यह रूप किसी तरह का हो सकता है—मानव-मन अपने विविध संस्कारों-प्रवृत्तियों, शिक्षा-संस्कृतियों, आदतों-अभ्यासों, स्थितियों-परिस्थितियों के आधार पर विविध रूपों के प्रति आसक्त होता है, आकर्षित-आकृष्ट होता है। स्तनपायी शिशु के लिए मां का रूप बड़ा ही आह्लादक होता है—और फिर खिलौने के रूप उसे बड़े ही प्रिय होते हैं। रूप वही है जिसमें मन रमता है, रस लेता है, कुछ काल के लिए विभोर हो उठता है, और बातों को भूल जाता है। बच्चे मां और खिलौने के रूपों में रम जाते हैं, और फिर अपने मित्रों-सहपाठियों के रूपों में, फिर प्रेमी-प्रेयसियों के रूपों में। युवक मन या प्रौढ़ मन भी रमणियों के रूपों में रमता फिरता है भरमता फिरता है। पुरुष आकर्षित होते हैं नारी रूपों में और नारी पुरुष-रूपों में।

पुरुष के लिए नारी रूप से बढ़कर स्थूलतया स्वाद्य रूप दूसरा नहीं मिलता—रूपों की महारानी है नारी, रूपों की मलिका है नारी, रूपों की अधिष्ठात्री देवी है नारी, रूपों को खजाना है नारी। नारी से बढ़कर रूप की कल्पना करना असंभव है। जगत् की रूप-प्रतियोगिता में नारी को स्वर्ण-पदक मिला है, नारी की टीम विश्व-विजेता टीम घोषित हुई है। नारी के अनेक रूप हैं, असंख्य रूप हैं, एक से एक मोहक, सम्मोहक, जादुई, दिव्य, अलौकिक। नारी के रूप वर्णन में वाणी थक जाती है, भारती असमर्थ हो जाती है, भाषा लड़खड़ाने लगती है, अपनी कमी-कमजोरी का अनुभव करने लगती है। दुनिया के सारे कार्य-व्यापारों के बीच बैठी है नारी—उसका सम्मोहक रूप—उसके प्रति आसक्ति-ममता-अनुरक्ति। जगत् के व्यापार-वृत्त की केन्द्र-विन्दु है नारी, सृष्टि-महाकाव्य की नायिका है नारी, जगत-काव्य की केन्द्रीय विषयवस्तु (central theme) है नारी, जीवन की केन्द्रीय अनुभूति है नारी, समग्र सृजन-प्रेरणा है नारी। नारी-रूप में नर पूरी तरह रम जाता है, जीवन का सब दुःख दर्द विसर जाता है, कष्ट-क्लेष, अभाव-औदासीन्य भूल जाता है।

पर जीवन की अंतिम तृप्ति, दीर्घकालिक परितोषण, सनातन संतोषण नारी-रूप में नहीं हो पाता। एक समय आता है, एक स्थिति, एक मनः स्थिति आती है जब नारी-रूप अपना सौन्दर्य खो देता है, (कतिपय कारणों से) नारी-सौन्दर्य अपनी सीमा, अपनी कालबद्धता का परिज्ञान कराने लगता है, परिचय देने लगता है। रूप की भूख आंशिक रूप से और अल्पकालिक रूप से नारी-रूप से मिटती अवश्य है पर यह रूप की भूख, सौन्दर्य-रस की भूख मानव-मन की मानव जीवन की अमिट भूख है—वह कभी मरने वाली या मिटनेवाली नहीं। बच्चों को रंगीन खिलौने का रूप आकर्षक होता है, युवक को युवती का रूप, पुरुष को नारी का रूप पर मानव-मन की रूपाकांक्षिणी कहानी यहीं खत्म नहीं होती-रूप-संधान, रूप-आस्वादन की यात्रा यहीं समाप्त नहीं होती। हम नित-नित नये रूपों को तलाशते रहते हैं, नव-नव रूपों का संधान-शोधन करते रहते हैं—और इस तरह यह तलाश किसी न किसी रूप में जीवन भर चलाती रहती है और अंततः यह असीम और अनन्त की तलाश बन जाती हैं।

नारी-रूप से आंशिक असंतुष्ट लोग प्रकृति के विस्तृत साम्राज्य में अनेकानेक रूपों का संधान करते हैं—कोई फूलों में रमता है, कोई उद्यान में, कोई वन-उपवन में, कोई सर-सरिता-सागर में, कोई शैल-शिखर, निर्झर प्रपात में, कोई मेघमाला विद्युत्बाला में। कोई पशु-पक्षी, लता-वीरुध में, कोई बियाबान-श्मशान में, कोई चनु-तारकों में, कोई प्रभात, अरुण, उषा, सूर्योदय, सूर्यास्त में। कोई हिमाच्छन्न उत्तुंग पर्वतशिखरों में, कोई अनन्त आकाश में और फिर कोई विराटदर्शन में।

इस तरह रूपों की अनेक श्रेणियाँ हैं, अनेक वर्ग हैं, अनेक कोटियाँ हैं, अनेक रूप हैं। क्षुद्र से लेकर विराट् तक, महास्थूल से लेकर चरमसूक्ष्म तक, छिछला से लेकर गहनगंभीर तक, संकीर्ण से लेकर व्यापक तक, शान्तबद्ध से लेकर अनन्त उन्मुक्त प्रसार तक—रूपों की अनेक स्थितियाँ हैं, अनेक स्तर हैं, अनेक धरातल हैं, अनेक आयाम हैं। मानव-मन अपने संस्कार-संस्कृति, रुचि-प्रवृत्ति, स्वभाव-प्रकृति, शिक्षा-दीक्षा, स्थिति-परिस्थिति के अनुसार इन रूपों के महासमुद्रों में संतरण करता है—अपने मनोनुकूल रूपों की ओर आकृष्ट-आसक्त होता है और फिर अपने आंतरिक नैसर्गिक संस्कार भाव-कल्पना-नुरूप रूपों की नव्य सर्जना भी करता है। मानव रूप का रसिक-आस्वादक है तो रूप का सर्जक-निर्माता भी। काव्य-कला-संगीत में वह अपने भीतर छिपे रूपों की आकांक्षा और कल्पना को आकार देता है, नये रूपों की सृष्टि-सर्जना करता है। मानव रूपाकांक्षी, रूपभोगी होने के साथ-साथ रूपकार भी है, छविकार भी है, रूप-सर्जक, छवि विधायक भी है।

पर जगत् के सारे रूप रूपातीत की ओर, 'अरूप' की ओर संकेत करते हैं, उंगलिनिर्देश करते हैं। सब दृश्यमान परिवर्त्यमान रूपों के पीछे जो शाश्वत सनातन 'अरूप' छिपा है—सब स्थूलों के पीछे जो सूक्ष्म छिपा है—सब साकारों के पीछे जो निराकार छिपा है—सब क्षुद्रों के पीछे जो विराट् छिपा है सब संकीर्णों के पीछे जो उदात्त

छिपा है, सब सान्तों के पीछे जो अनन्त छिपा है, उसकी तलाश बराबर जारी रहती हैं, नित्यनिरन्तर, अप्रतिहत-अनवरुद्ध क्योंकि दुनियाँ के सारे रूप, चाहे वे रंगीन खिलौने के रूप हों, चाहे युवती के, चाहे रमणी के, चाहे कला के, चाहे प्रकृति के—वे हमारे अनन्त यात्रा की मंजिल नहीं है, अन्तिम गंतव्य नहीं हैं—वे तो मात्र यात्रा के टिकाव हैं, बिलभाव है, ठहराव हैं, 'स्टेशन' हैं, 'स्टैण्ड' हैं। रूप की यात्रा तबतक चलती रहती है जब तक कि हम किसी मनभावन 'अरूप' में न प्रविष्ट हो जायें—जब तक कि हमें अरूप के दर्शन-स्वादन न हो जायें। जैसे छोटे नदी-नालों का पर्यवसान बड़ी नदी में होता है और जैसे बड़ी नदी का पर्यवसान किसी सागर में और फिर सागर का पर्यवसान किसी महासागर में उसी तरह रूपों का यह आकर्षण मिथ्या स्वल्पकालिक सतही रूपों से लेकर नारी, कला, प्रकृति से होते हुए परमपुरुष कहें या ब्रह्म कहें, 'निर्गुण' की ओर बढ़ जाता है। मानवकृत रूपों से हम प्रकृतिकृत रूपों की ओर बढ़ते हैं और फिर प्रकृतिकृत रूपों को भी पारकर, उनका भी लंघन-अतिक्रमण कर हम विराट विभु मंगलमय रसमय आनन्दमय—सब रूपों, स्वादों, रसों, वर्णों-संगीतों के स्रष्टा, परम-पुरुष या ब्रह्म के यहाँ पहुँचते हैं। वहीं जाकर हमारी रूप-संधान यात्रा का पर्यवसान होता है, हमारे रूपान्वेषणात्मक महाकाव्य की परिसमाप्ति।

जब तक हम उस 'स्टेज' उस स्थिति तक नहीं पहुँचते, जब तक हमें अरूप के रूप-स्वाद का आनन्द नहीं मिलता जब तक हमें विराट के रूप सौन्दर्य का पान नहीं होता, जब तक हमें असीम-अनन्त के असीम-अनन्त रूप-सौन्दर्य का रसभोग नहीं होता, तब तक तो हम पानी के लिए छटपटाती मीन-मछली की तरह हैं, तब तक तो हमारी रूप-पिपासा, रूप-जिज्ञासा, रूपाकांक्षणा चलती ही रहती हैं, तब तक हमें पूर्ण तृप्ति, परिपूर्ण परितोष कहाँ मिलता है? तब तक हमारे शरीर-मन-आत्माकी आँखें रूप-दर्शन की प्यासी ही बनी रहती है—और चिल्ला-चिल्ला कर चतुर्दिक चीत्कारती रहती हैं।

'अखियाँ हरिदरसन की प्यासी'

□

शुद्ध रस और कुछ नहीं विशेषीकृत रागद्वेषादि विकारों का एक ऐसा संस्कार है, जो दुःखप्रद या सुखप्रद नहीं होता, वह दुःख-सुख को सर्वमय बनाकर एक ऐसे संवेदन में रूपान्तरित कर देता है, जिसमें अपनी अस्मिता खो नहीं जाती, विस्तृत हो जाती है, जातीय अस्मिता बन जाती है। यह बनना ही रस है। यह बनकर अकेला पड़ जाना, समूह में रहते हुए समूह को अपने में पाते हुए भी अकेला पड़ जाना, एक अपूर्व तादात्म्य के अनुभविता के रूप में अपने आसपास के संसार से क्षणमात्र के लिए ही सही बिछुड़ जाना और खो जाने में नयी पहचान पाना, यही रस है।

सौजन्त—रस-सिद्धान्त की भूमिका, विद्यानिवास मिश्र, पृ० XII

Ankhiyaan Haridarasana Ki Pyaasi

(Prof. Ravindra Nath Ojha)

Editor's Summary

Prof. Ravindra Nath Ojha in his poetic as well as philosophical expresion says that the whole universe is full of forms & shapes and having its own beauty, and we all have a desire to relish these worldly beauties according to our own liking & choice; the desire of relishing the worldhy beauty is a relative phenomena and it depends upon various factors like sanskaras, circumstances, educational backgrounds etc. and hence varies from individual to individual percipient; it has also been experienced that our taste or point of desire is not stable or unchanged but it is unstable and undergoes to change during the course of time and thus the hunger of attatchment with worldly beauties happens to be unending and this process continues until we come into contact with the experience of the cosmic beauty.

In the concluding para our author perfoundly reveals that unless and until we attain the blissful splendour, the infinite, unending beauty of the supreme, we continue to suffer with unpeaceful state of mind and the thirst of our eyes i. e. eye of the body, eye of the mind and eye of the soul remains unquenched and screech 'Ankhiyaan Haridarasana Ki Pyaasi' i. e. eyes have a thirst and wishing eagerly for the union with the beautiful look of Hari, the eternal beauty of the supreme.

◘

जहाँ तक संगीत-कार्यक्रम-प्रस्तुति का सम्बन्ध है, गायक या वादक सम्पूर्ण प्रस्तुति को प्रेम-प्रदर्शन का ही रूप देता है जैसा कि प्रेमी या प्रेमिका के प्रति आन्तरिक गहन प्रेम रहता है । यह मन्दिर के पावन पूजाकक्ष में रहने और पूजा-उपासना में रत रहने के समान है ।

—पं० रविशंकर

राष्ट्रीय एकता में मंचकलाओं का योगदान

—डॉ० अर्चना दीक्षित

मंचकला का तात्पर्य है कि जो कलाएँ मंच पर प्रस्तुत की जा सकें। आजकल संगीत, नृत्य, नाट्य आदि कलाओं के लिए 'मंचकला' शब्द प्रचार में है। चलचित्र मंच पर नहीं बल्कि पर्दे पर प्रस्तुत किया जाता है लेकिन उसे भी नाट्य के अन्तर्गत ही रखा गया है। मैं अपने इस लघु लेख में यह बताने का प्रयत्न करूंगी कि राष्ट्रीय एकता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में मंचकलाएँ कहाँ तक योगदान करती हैं—कर सकती हैं।

संगीत को ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इसके दोनों उपादान 'स्वर' तथा 'लय' अत्यन्त सूक्ष्म हैं। संगीत सभी को अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसका आनन्द प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कोई भी भाषाभाषी हो, किसी भी धर्म को मानता हो, प्राप्त कर सकता है। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी तथा बनस्पतियों पर भी इसका प्रभाव स्वयंसिद्ध है। संभवतः इसीलिए संगीत को विश्व-भाषा और प्राणिमात्र की भाषा कहा है।

हमारे समाज में, मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक संगीत अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक अवसर पर चाहे वह धार्मिक अवसर हो या सामाजिक, संगीत हमारे साथ जुड़ा हुआ है। संगीत सबको जोड़ने वाली कला है। ग्रामीण अंचलों में लोग प्रत्येक अवसर पर समूह में गान एवं नृत्य करते हैं। मन्दिर-मस्जिद आदि धार्मिक स्थलों पर भी भजन-कीर्तन तथा कव्वाली आदि का गान होता है जो मिल जुल कर किया जाता है। इस प्रकार संगीत की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही लोगों को जोड़ने की है, प्रेमभाव बढ़ाने की है, लोगों में एकत्व स्थापित करने की है।

स्वयं संगीत में उसके अन्यान्य घटक स्वर, ताल, लय, राग, पद, भाव आदि एक दूसरे से गुँथे रहते हैं। जैसा कि हम जानते हैं संगीत में तंबूरे या बाजे के स्वर के साथ स्वर मिलाना होता है। उसी स्वर में सारंगी, तबला आदि मिल कर, सब वादक एवं गायक मिलाकर राग की प्रस्तुति करते हैं और तब आनन्द की सृष्टि होती है। भारतीय संगीत में तो संवाद ही उसका प्राणतत्व है। संवादहीन विवादी संगीत की हमारे यहाँ कल्पना ही नहीं की गई है। इस प्रकार जिसका प्राणतत्व ही संवाद हो वह संगीत स्वभावतः एकता ही स्थापित करता है। वह जोड़ ही सकता है।

भारतवर्ष का संगीत मूलतः एक ही संगीत था जो कालक्रम में दो शैलियों में विकसित हुआ। एक उत्तर भारतीय संगीत (हिन्दुस्तानी संगीत) दूसरा कर्णाटकी संगीत या दक्षिण भारतीय संगीत। दोनों पद्धतियाँ आचार्य भरत को अपना आदिम आचार्य तथा भरत नाट्यशास्त्र को ही अपना आदि ग्रंथ मानती हैं। दोनों ही पद्धतियों में 'सात स्वर' तथा 'राग-गायन' मान्य है। आज सद्भावना मंच से एक ही मंच पर दोनों प्रकार के संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत होते हैं। दक्षिण के शास्त्रीय संगीत में भले ही उत्तरी शास्त्रीय संगीत से थोड़ी भिन्नता दिखती हो, किन्तु दक्षिणी चलचित्र-संगीत में तो वही एक संगीत सुनाई पड़ता है—केवल भाषा अलग रहती है। इस प्रकार सांगीतिक एकता की राष्ट्रीय एकता के साथ सहज ही संगति बैठती दृष्टिगोचर होती है।

विभिन्न धर्मों के लोग यही संगीत गाते-बजाते हैं। हिन्दू गुरु का मुस्लिम शिष्य (हरिदास स्वामी के शिष्य मियाँ तानसेन) तथा मुस्लिम उस्तादों का हिन्दू शिष्य (उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ के शिष्य पं० रविशंकर, पं० निखिल बनर्जी) होना संगीत में बहुत सामान्य बात है। सभी संगीतज्ञ चाहे वे किसी भी जाति-धर्म के हों, सदारंग-

अदारंग-रचित ख्याल तथा स्वामी हरिदास-रचित ध्रुपद उसी आदर के साथ गाते बजाते हैं। बाबा अल्लाउद्दीन खाँ साहब मैहर देवी के परम भक्त थे। उस्ताद बिस्मिला खाँ साहब ने अपनी शहनाई की साधना शिव-मन्दिर में की। उस्ताद बड़े गुलामअली खाँ का रिकार्ड 'जपाकर जपाकर तू हरि ॐ तत्सत्' भला किसने नहीं सुना है? हिन्दू गायक भी 'करीम नाम तेरो' ख्याल तथा 'अल्ला को याद रखिये' जैसे ख्याल आदर के साथ गाते हैं। श्रद्धांजलि कार्यक्रम किसी भी गायक-गायिका की याद में हो, चाहे उस्ताद फैयाज खाँ साहब-स्मृति-समारोह हो, अथवा पं० कण्ठे महाराज-स्मृति-समारोह हो अथवा पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर की जयन्ती हो; सभी धर्म-जाति तथा भाषाभाषी कलाकार इन महानुभावों को स्वरांजलि देने उपस्थित हो जाते हैं। यहाँ धर्म, भाषा अथवा जाति का कोई भेद नहीं होता। संगीत के कार्यक्रमों में भी मुख्य गायक या वादक के साथ तबला, सारंगी, हारमोनियम पर अन्य धर्म-जाति के कलाकार सहज सहयोग प्रदान करते हैं। यहाँ सबका धर्म एक होता है—संगीत। संगीत के कार्यक्रम राष्ट्रीय एकता का, भाईचारे का उत्कृष्ट उदाहरण हैं—क्योंकि वहाँ कभी धर्म-जाति-प्रांत की बात नहीं उठती। वहाँ केवल स्वरों, रागों, तालों, एवं वाद्यों तथा बन्दिशों की चर्चा होती है।

हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम में भी। 'वंदेमातरम्' गीत ने कितना सम्मान पाया तथा उस गीत को गाते हुए कितने ही देशभक्त शहीद हो गये, यह किसी से छिपा नहीं है। अनेक देश-भक्ति की कविताओं को सुन्दर संगीतमें बाँधकर प्रचारित किया गया तथा इन गीतों के माध्यम से देश-प्रेम जागृत किया गया।

नृत्यकला में भी कलाकार चाहे किसी भी प्रांत या धर्म का हो, कृष्णलीला, चीरहरण, रामायण आदि के प्रसंग पर भावनृत्य करता है। कहीं कोई धर्म या भाषा की दीवार नहीं होती। कई गुजराती अथवा उत्तर भारतीय छात्राएँ अत्यन्त रुचि से भरतनाट्यम् (जो कि दक्षिण भारत का नृत्य-प्रकार है) सीखती हैं तथा उत्साह के साथ दक्षिण की भाषा सीखती हैं ताकि भरतनाट्यम के पद समझ में आयें। कई विप्रांतीय कलाकार ओडीसी नृत्य की तालीम लेते हैं। झवेरी बहनों ने गुजरात की होते हुए भी मणिपुरी नृत्य में नाम कमाया। प्रांत, भाषा अथवा धर्म के आधार पर कहीं भी परस्पर वैमत्य नहीं है और न ही कोई अन्तर्विरोध।

मंचकलाओं में अत्यन्त प्रभावशाली एवं अत्यधिक लोकप्रिय नाट्यकला एवं चलचित्र है। यहाँ अनेक धर्मावलम्बी, अनेक प्रांतों के लोग एक दूसरे से अत्यधिक हिल-मिलकर काम करते हैं। तभी तो नाट्य का सजीव मंचन हो पाता है। वहाँ पलभर के लिए भी वैमनस्य नहीं चल सकता। कई हिन्दू कलाकार नाट्य या चलचित्र में मुस्लिम पात्र की भूमिका निभाते हैं। चलचित्र 'मुगले आजम' में अकबर भूमिका स्व० पृथ्वीराज कपूर ने निभायी थी। इसी प्रकार कई मुस्लिम अदाकार हिन्दू की भूमिका अदा करते हैं। कई बार देखा गया है कि नाटक का निर्देशक मराठी है तो निर्माता सिंधी; संगीतकार बंगाली है तो गायक-गायिका तथा नायक-नायिका किसी अन्य प्रांत के। सभी मिलजुलकर लोकरंजन हेतु नाटक तथा चलचित्र का निर्माण करते हैं। नाट्य-निर्माण में सारी विविधता भूल कर वे भावों के प्रवाह में बहते हैं। संगीत में कलाकार निजी जात-पाँत भूल कर स्वरों की भाषा में बहते हैं। इसके अतिरिक्त कथानक की दृष्टि से भी ऐसे अनेक नाटकों तथा चलचित्रों का निर्माण किया गया है जिनके द्वारा राष्ट्रीय एकता का सन्देश प्रसारित हुआ है।

इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना-जागरण और तदनुरूप राष्ट्रीय एकता-साधना में मंचकलाओं का अप्रतिम योगदान है।

●

Contribution of Performing Arts To The National Integrity

(Dr. Archana Dixit)

Editor's Summary

In present article, Dr. Archana Dixit has first of all explained the concept of performing arts viz. 'Performing art means the art which is performed on the stage i.e. music, dance, drama and the movie.' The author has further undergone and well proved that how the performing arts fulfil the objective of national integrity. We find an inbuilt thread of unity in the performing arts, as each and every participant of the performing team presents his art with association of each other by breaking all the barriers of provincialism as well as caste and creed. Dr. Dixit in her study has thrown light on each and every aspect of unity embodied with the preforming arts.

Some observations made by the auther are worth notice. For example. in one of her versions she says, "In the music-notes, rhythmes, ragas, words, senses and sentiments all work togother in a plaited form. All musical instruments are set and tuned to one and the same pitch and then only a successful performance takes obviously it is an unparallel example and symbol of unity & harmony."

□

कुमाऊँ का लोकगायक अपने साहित्य को गान्धर्व कहता है।···कुमाऊँ का गायक 22 प्रकार की वाद्यध्वनियों में नौ तोड़ों के द्वारा अपनी संगीतात्मकता को व्यक्त करता है।···इस प्रकार कुमाऊँनी साहित्य में संगीत-तत्व तीन रूपों में अभिव्यक्त होता है—गायक का दीर्घ आलाप, स्वरों का आरोह-अवरोह एवं वाद्य यन्त्रों की सुनियोजित ध्वनियाँ।

सौजन्य—'कुमाऊँनी लोक-साहित्य में संगीततत्व के आयाम', रमेश चन्द्र पन्त

कलाओं के द्वारा होने वाली आनन्दानुभूति पर विचार करने के भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण

—डॉ० सुभद्रा चौधरी

प्राय: संसार के सभी प्रमुख देशों में कलाओं के द्वारा होने वाली आनन्दानुभूति पर न्यूनाधिक मात्रा में विचार हुआ है। पाश्चात्य देशों में सौंदर्यानुभूति के रूप में इसका अध्ययन किया गया और उसे Aesthetics संज्ञा दी गई; इसी का भारतीय अनुवाद 'सौंदर्यशास्त्र' किया गया। आगे चल कर हर कला के स्वतन्त्र सिद्धान्त बने इसलिए प्रत्येक कला का अपना-अपना सौंदर्यशास्त्र बना। इस प्रकार के अध्ययन का इतिहास पश्चिमी देशों में बहुत प्राचीन नहीं है। Aesthetics के रूप में कलाओं के अध्ययन की शुरुआत यूरोप में 18वीं शताब्दी के मध्य में हुई इसलिए इसे अधिक से अधिक ढाई सौ वर्ष पुराना कह सकते हैं।

भारत में कलाओं के माध्यम से होने वाली अनुभूति का 'रसानुभूति' के रूप में जो अध्ययन, चिन्तन और विश्लेषण हुआ उसकी बड़ी प्राचीन परम्परा रही है तथा इसके जो सिद्धान्त स्थापित किए गए उसे 'रसशास्त्र' के रूप में जाना जाता है। दीर्घ चिन्तन-परम्परा के फलस्वरूप जो सिद्धान्त स्थिर हुए उनका मूल वेदों, दर्शनों और नाट्यशास्त्र आदि में है तथा परवर्ती चिन्तकों ने उसे समृद्ध किया। रसशास्त्र के इतिहास पर विचार करना यहाँ संभव नहीं है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रसशास्त्र का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है।

सौंदर्यशास्त्र और रसशास्त्र में जो अन्तर हैं उनके मूल में भारतीय और पाश्चात्य चिन्तन प्रणालियों का, दृष्टिकोण का भेद है। पाश्चात्य प्रणाली ज्ञातव्य के खण्ड-खण्ड करके विशेष अध्ययन करने की, फिर उन्हें जोड़ कर ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के संदर्भ में अध्ययन करने की और तब मनुष्य के साथ संबंध स्थापित करने की है जो inter-disciplinary study के रूप में पहचानी जाती है। यह पद्धति कुछ इस प्रकार की है कि पहले शरीर के विभिन्न अंगों को काट कर अलग-अलग करके उनका अध्ययन करना और फिर उन्हें जोड़ कर शरीर की रचना करना। इससे शरीर की पुनर्रचना तो हो सकती है किन्तु वह निर्जीव रहता है, उसमें प्राणप्रतिष्ठा संभव नहीं। हमारे यहाँ ज्ञान को अखण्ड माना गया और उसका इसी रूप में अध्ययन हुआ। अखण्डित सत्ता का ज्ञान होने पर उसके खण्डों का ज्ञान स्वत: हो जाता है इसलिए अंगी यानी चेतनायुक्त देह के ज्ञान में अंगों का ज्ञान अन्तर्भूत है।

ज्ञातव्य यानी जिसका ज्ञान प्राप्त करना है एक अखण्ड, परम सत्ता है जिसे भारतीय चिन्तन में 'ब्रह्म' या 'परब्रह्म' कहा गया। यह वह अन्तिम सत्ता है जिसमें से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति हुई तथा जो 'सच्चिदानन्द' यानी सत्-चित्-आनन्दरूप है। इस सच्चिदानन्द ब्रह्म के आनन्दांश की प्राप्ति ही सभी का अन्तिम लक्ष्य रहा फिर चाहे ज्ञानमार्ग हो, योगमार्ग हो अथवा भक्तिमार्ग हो। कलाओं का प्रयोजन भी ब्रह्म के आनन्दांश की, आत्मानन्द की प्राप्ति ही था। साधन भिन्न थे साध्य सबका एक था, मार्ग भिन्न थे गन्तव्य एक था।

विभिन्न कलाओं में अलग-अलग माध्यमों के द्वारा साधकों की परमानन्द की अनुभूति ही व्यक्त हुई। स्वर-लय को आधार बनाया तो विलक्षण प्रभाव से युक्त देवी-देवतारूप राग-रागिणियों की सृष्टि हुई। शब्द को

माध्यम बनाया तो अमर काव्यों की रचना हुई। रंग तूलिका आदि को चुना तो अजन्ता जैसे विशाल भित्ति-चित्रों अथवा छोटे-छोटे चित्रों (miniatures) के रूप में आनन्द व्यक्त हुआ। पत्थर जैसे जड़ उपकरण का ग्रहण किया तो कोणार्क, एँलोरा, आबू, बेलूर के मन्दिरों में उत्कीर्ण मूर्तियों के रूप में उन पत्थरों में भी प्राण फूँक दिए। कल्पना और कौशल का, हृदय और बुद्धि का, भावना और विवेक का, भक्ति और ज्ञान का ऐसा अपूर्व संयोग इन कृतियों में दिखाई देता है कि दर्शक अभिभूत हो जाता है, अपना अस्तित्व भूल जाता है और उसे भी परम आनन्द की अनुभूति होती है। कलाओं में परमानन्द— ब्रह्मानन्द— की अनुभूति होने के कारण ही उनके विश्लेषण में भी शब्दब्रह्म, नादब्रह्म, रसब्रह्म जैसी संज्ञाएँ प्रयुक्त हुईं।

भारतीय कलाओं के शास्त्र के निर्माण में जिस पद्धति का प्रयोग हुआ वह 'विज्ञान' अर्थात् विशेष प्रकार के ज्ञान पर आधारित—दार्शनिक, आध्यात्मिक पद्धति थी जिसमें आत्मानुभूति से प्राप्त ज्ञान का तर्क से पुष्ट शैली में निरूपण हुआ। महान् वैज्ञानिक सी. वी. रमण के अनुसार 'जहाँ पाश्चात्य विज्ञान की सीमा समाप्त होती है वहाँ से भारतीय विज्ञान की शुरुआत होती है।' पाश्चात्य विज्ञान मुख्यत: स्थूल उपकरणों और laboratory experiments पर आधारित है जब कि भारतीय चिन्तन में मानव शरीर ही प्रयोगशाला और उसके भीतर की चेतना ही उपकरण था जिसने आत्मसाक्षात्कार के द्वारा प्राप्त सत्य का उद्घाटन किया। इसलिए कलाओं के विश्लेषण में उसके भौतिक, आध्यात्मिक, अनुभूतिपरक—सभी पक्षों का समन्वित रूप व्यक्त हुआ। यहाँ आध्यात्मिक ज्ञान को ही विज्ञान माना गया।

सौंदर्यशास्त्र की तुलना में रसशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली, प्रक्रिया और स्वरूप अधिक समृद्ध है। पाश्चात्य प्रक्रिया में unselected group पर होने वाले प्रभाव का statistics के आधार पर विश्लेषण किया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया स्थूल और बाह्य है जिसमें भीतर की प्रक्रिया पर विचार नहीं है। भारत में विश्लेषण का आधार अन्त: प्रक्रिया है क्योंकि 'साधारणीकरण' के बिना कलापरक अनुभूति असंभव है। पाश्चात्य विचारक इन्द्रिय और बुद्धिस्तर में ही उलझे रह गए। बुद्धिस्तर के संबंध में महर्षि अरविन्द के ये विचार उल्लेखनीय हैं— "All European metaphysical thought—even in those thinkers who try to prove or explain the existence and Nature of God or of the Absolute—does not in its method and result go beyond the intellect. But the intellect is incapable of knowing the Supreme Truth; it can only range about seeking for Truth and catching fragmentary representations of it, not the thing itself, and trying to piece them together. Mind cannot arrive at Truth, it can only make some reconstructed figure that tries to represent it or a combination of figures." (ईश्वर या परमतत्त्व की सत्ता और स्वरूप को समझने और सिद्ध करने की कोशिश करने वाले विचारकों सहित सारा यूरोपीय तत्त्वचिन्तन पद्धति और निष्कर्ष की दृष्टि से बुद्धि से आगे नहीं जा पाता। लेकिन परमसत्य को जानने में बुद्धि अक्षम है, वह केवल सत्य को खोजने और उसका खण्डित चित्रण करने में ही घूमती रह जाती है और फिर उन्हें जोड़ने की कोशिश कर सकती है लेकिन तत्त्व को नहीं पकड़ पाती। बुद्धि सत्य तक नहीं पहुँच सकती, वह केवल एक ऐसी आकृति की पुनर्रचना कर सकती है जो सत्य का प्रतिनिधित्व कर सके या विभिन्न आकृतियों का संयोग हो।) इसमें भारतीय और पश्चिमी चिन्तन प्रणालियों का अन्तर स्पष्ट है।

भारत में कलाओं के विश्लेषण में दार्शनिक पद्धति ही आधार रही है क्योंकि उसमें सम्पूर्ण तत्त्व पर विचार करने के लिए समृद्ध शब्दावली और अत्यन्त विकसित तथा प्रतिष्ठित एक विशिष्ट पद्धति उपलब्ध है। इस पद्धति की आधार-भूमि पर नाट्यशास्त्र और साहित्य-शास्त्र के रूप में अनुभूति और अभिव्यक्ति, प्रभाव और मूल्यांकन के लिए बड़े सूक्ष्म सिद्धान्त स्थापित हुए। पश्चिम से प्रेरणा लेने वालों के लिए इस संबंध में प्रख्यात

पाश्चात्य चिन्तक टी. एॅस्. ईलियट की यह स्वीकारोक्ति उल्लेखनीय है—"The subtleties of Indian philosophers make most of the great European thinkers look like schoolboys and in poetics what Anandavardhana and Abhinavagupta has written about dhvani makes what Mallarme and other theorists or French Symbolism said about suggestion read like undergraduate thesis–writing." (भारतीय दार्शनिकों की सूक्ष्मताओं के सामने अधिकांश महान् यूरोपीय विचारक 'स्कूल बॉय' मालूम होते हैं और काव्यशास्त्र में आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त के 'ध्वनि' संबंधी चिन्तन की तुलना में फ्रैंच सिम्बॉलिज्म के मलार्मे और अन्य चिन्तकों के 'सजॅशन' सम्बन्धी कथन 'अण्डरग्रेजुएट' स्तर का लेखन प्रतीत होता है।)

भारतीय पद्धति में भौतिक, तात्त्विक, नैतिक, आध्यात्मिक, अनुभूतिपरक—सभी दृष्टियों अथवा पक्षों से एक साथ समन्वित विचार हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि अपनी पृष्ठभूमि, विचारधारा और पद्धति के द्वारा अपने कलासौन्दर्य, सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता और सूक्ष्मताओं को अपने ही कान, आँख, और बुद्धि से परखें।

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषाश्चिन्ताजडंदर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीहशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

अर्थात्—(कण्व ऋषि अपने-आप से कह रहे हैं) आज शकुन्तला अपने पति के घर जायेगी, इसलिए मेरा हृदय उत्कण्ठा से व्याकुल हो रहा है, और आँसुओं के भीतर रोकने से मेरा गला भी भर गया है। मेरे नेत्र भी चिन्ता से जड़ीभूत होकर देखने में असमर्थ हो रहे हैं। यदि वनवासी वीतराग मेरे जैसे निस्पृह की भी कन्या के वियोग की कल्पना से ऐसी विफलता हो रही है तो फिर विचारे गृहस्थ सांसारिक लोग कन्या के वियोग रूपी दुःख से कैसे नहीं दुःखित हों।

—कालिदासकृत अभिज्ञान शाकुंतलम् से।

Indian And Western Views Of Thoughts Regarding The Experience Of Delight Through The Arts

(Dr. Subhadra Chaudhary)

Editor's Summary

Dr. Subhadra Chaudhary has Compared the two views of thoughts i. e. Indian & We stern in regard to 'Experience of delight through the arts' as the heading of the article itself reads. Our author has thrown light on the historical and conceptual background of the two views. The basic difference between the two views is influenced by the phylosophical inheritage of the two thoughts. The westerners believe in the system of dividing the things in small pieces and then assemble them together where as to its opposite, the Indian view of studying the things is in its whole pesspetive. This principle applies to the each and every subject and the same distinction has been spread through the whole area of thinking, obuiously in the field of arts too. Western tradition of aesthetics has come into existence hardly a two and fifty years ago where as Indian tradition of thinking to this area which is known as Rasashastra is very old.

Contribution Of The State Of Bikaner To The Development Of The Art Of 'Kathak'

Dr. Jai Chandra Sharma.

The early history of the Indian dance and music could be traced only when we probe into the history of Royal families, Jagirdars and rulers. The available historical facts about their services to these arts enable us to know about the history of dance and music. Unless the historians prove their authenticity they remain as merely old sayings.

The state of Bikaner was founded on Vaisakh Shukla 2 in Vikram Samvat 1545 by Rao Bikaji, the son of Rao Jodha, the ruler of Jodhpur. Bikaji arrived her with his uncle Kandhal ji. He gave some parts of land and a few villages to his uncle and his brother Bida and himself became the ruler of Bikaner. Thus three families of Rathores were established here. Today they are known as Bikawat, Bidawat and Kanghlot. Under their patronage the dholies, damanies and nagaarchies used to do their jobs of singing, dancing and playing instruments. But a new fact has recently come into light that some people out of Rajput khamp (खांप) itself were then previleged to play on 'Nagaara' and 'dhol' on certain occasions like war or some auspicious day. These people were called "Randhawal", Bhinjaji and his brothers Lakhoji and Chandoji were such 'Ran-dhawals' who had landed in Bikaner along with Rao Bikaji. The descendants of this family are still living in Bikaner and they are professional artists of music.

During the entire period begining from the times of Rao Bikaji to Rao Kalyanmal no factual document is available about the development of fine arts under the patronage of the state. Of course some evidence is there that during the reign of Maharaja Raisingh in 1574, at least some efforts were made in this respect. As at the instance of Akahar a number of artists were appointed in Jaipur and other states, Maharaja Raisingh also employed some for the purpose of developing dance and music in Bikaner. Among these paid artists some were from the same 'gharanas' and other were their relatives who were employed in Alamkhana, Nobat Khana, Nakkar khana, Talimkhana and Gunijan khana and received 'Neg' according to the customs. In the times of Rao Kalyanmal a few dancers were said to have been invited to Bikaner from Gujrat. None of the rulers of Bikaner showed any interest in developing dance and music till the rule of Karan Singh. Therefore a long age of darkness went by quietly. Then in the first half of the 17th

Century, some rays of hope flashed on the horizon with the begining of the reign of Maharaja Anoopsingh. He was a voracious reader and had a deep interest in different classical and fine arts. Music and dance were his great love.

In his 'Darbar' scholars and learned people were honoured. They used to come to him from far off places with the hope to get their aspirations meterialized in the form of recognition by the state and Anoopsingh gave them their dues.

Bhav Bhatt was one such artist. His father had a position in the darbar of Shahajahan. Bhav Bhatt was a Pandit of Sanskrit and equally well versed in the theoretical aspects of dance and music. The love of Anoopsingh for arts impressed him deeply and he settled in Bikaner leaving Delhi. Here he penned a number of great books on dance and music like "Anoop Sangeet Ratnakar", "Anoop Sangeet Vilas", "Anoop Sangeet Ankush" and "Bhav Manjari". All these books are still kept in tact in the Anoop Sanskrit Library, situated in the Lalgarh palace of Bikaner. Anoopsingh himself wrote a Book "Anoop Sangeet Vinod" in which various principles of the art of gestures have been delineated. At present some two hundred three books on dance and music are available in the Anoop Sanskrit Library.

In the times of Maharaja Anoop singh there was a Kathak named Sanval Das. His father Jeewan Dasji was a great dancer, musician and singer and it was he who taught his son the art of dance and music. He had gained the knowledge of these arts from great scholars and experts in this field. Besides, it is said that Sanwaldas had an inborn flair for dance. His art was fanned by the scholarly discoursed and books of great experts like Bhav Bhatt and he attained such high level skill in the art of dance that it was natural and easy for him to go across the tank full of water with beats of his feet and even the string of his ghungharoos would not get wet, though all these things about his skill are based on popular belief. He was a Songara Chouhan. People continued to talk about his discourses on the art of dance for generation of Bhati.

In the fourth decade of this century, the author personally heard these things from Malji, son of Dhanji Garhmanga of Jharia village of Churu District. The tradition of Malji went on the Dedraj, Manghiji, Gopiram and Anand Prakash etc. The descendants of these people, Janki Prasad and Chunnilalji established the Banaras gharana. These two brothers were born and brought up in Malusar in the state of Bikaner, but Janki Prasad shifted to the city of Kashi. He contributed mostly to the foundation and development of the art of 'Kathak'. A lot of things can be found about his personality and style of dance in written form in our treatises on dance. He was a contemporary of Maharaja Ratan Singh and Sardar Singh. In the times of Maharaja Dungar Singh, a descendant of Janki Prasadji awarded the village of Indra-

pura for his outstanding services in the field.

Various branches of the Janki Prasad gharana developed in this state since then. Some of them flourished in the Nyama village of Churu district and others under the shelter of the rulers of Bikaner including one in the village of Bhaleri. The art form of this gharana is altogether different from that of Jaipur gharana. It is the only gharana of Kathak in Iindia in which the words (Bola) of dance themselves are used while dancing. All the artists and scholars regard the art of this gharana as pure, sacred and classical. The impact of the Janki Prasad gharana on the Beedabati area of Bikaner is quite obvious. It is known as the style of Jaipur gharana.

There are five forms of the Janaki Prasad gharana that developed in villages of Gopalpura, Kanvora, Sobhasar, Beedasar and Charwas. The instructors or teachers of dance in these places have played a very significant role in making the Jaipur gharana widely known. In the 19th century, they made great advancement in developing this art. The Kathaks of Beeda bati presumed that the beat and rhythm itself is the dance and gave performaneas on the stage with extra preparations in complex 'Rachna' and selective rhythm, on most subtle beats. This startled the audience and consequently expanded to the distant corners of India. Among them Kathaks of Melusar village of the state of Bikaner came forward conspicuosly. This peculiar style gathered importance and significance because it comprised of extensive 'bhaav and rachanas' packed with 'vira. Sringar, Karuna and Bhakti rasas and their minuteness and variety. It arrested the attention of and literally the audience by innovative experiments, 'bol' of meaningful and meaningless 'dhawanis' (sound) and their combinations of various types, presentation of precise and eleborate sounds etc.

Other than those sheltered and pertained by the state, a good number of artists have come into prominence in this region. There are three categories of folk artists here—those who were kshatriya, vaishya or brahmin and who indulged in this art for their own satisfaction. Then those, who were amateurs who were on the staff of the artists of the state such as bhat, Sunar, Nai and Suthar etc. And lastly, the professional artists like damami, dholi, dadhi, manganher, garhmanga etc. They used to entertain any individual and were rewarded by him.

Thus the artists of Bikaner actually laid the foundation of the Jaipur and Banaras 'Shaili' (style) of dance. The state of Bikaner has been rich and prosperous as regards both the theoretical as well as practical aspects of the art for many ages. We can hardly trace such abundance of literature and artists related to dance and music in any other part of India. The Kathaks of this region have been and are making efforts to develop the art of Kathak in India and abroad. But the importance of this shrine of art can be appreciated only by those who have themselves visited it.

सन्दर्भ—

(1) बीकानेर राज्य का इतिहास ले० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (भाग 1 व 2)

(2) बीकानेर तबारीख (उर्दू) ठा० मेघ सिंह

(3) बीकानेर का इतिहास (अंग्रेजी) कर्नल टॉड

(4) राज-परिजन परिचय ले० रमेशचन्द्र 'गुणार्थी'

(5) राजस्थान की जातियाँ ले० रमेशचन्द्र 'गुणार्थी' की खोज।

(6) मरदुम शुमारी राज मारवाड़ (बावत सन् 1891 ई० हिस्सा दूसरा)

●

कभी कभी ऐसा लगता है, चाँद सदा ही रोता रहता।
औ' तारों के अश्रुकण से, यामा गात भिगोता रहता॥
कभी-कभी ऐसा लगता है, शबनम आँसू हैं फूलों के।
रो-रो देते हैं ये घायल, बिधते जब तीखे शूलों से॥

सौजन्य—सन्तोष कौशलकृत
'कभी-कभी ऐसा लगता है।'

'कथक' कला के विकास में बीकानेर राज्य का योगदान

(डॉ॰ जयचन्द्र शर्मा)

संपादककृत सार-संक्षेप

डॉ० जयचन्द्र शर्मा ने अपने शोधपूर्ण निबन्ध के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि कथक नृत्य के विकास में बीकानेर राज्य का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बीकानेर राज्य के अधिकांश नरेशों ने कथक नृत्य के कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय दिया। कथक का बनारस घराना जानकी प्रसाद तथा चुन्नी लाल की देन है जो मूलतः बीकानेर के निवासी थे। लेखक के अनुसार जानकी प्रसाद कालान्तर में बनारस में जा बसे थे और वहाँ पहुँचकर उन्होंने कथक नृत्य के विकास के लिए अविस्मरणीय कार्य किया। डॉ० शर्मा ने अपनी गवेषणा में यह भी रेखाङ्कित किया है कि कथक के जयपुर घराने का विकास भी बीकानेर के ही कलाकारों की देन है। प्रस्तुत लेख में यह भी स्पष्ट किया गया है कि कथक नृत्य के सिद्धान्त तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्षों में बीकानेर का नेतृत्व रहा है।

With Best Compliments of

KAIMUR STONES PVT. LTD.

Sinduriya Road
Chopan, Sonebhadra

KAILASH CONSTRUCTION COMPANY

Sinduriya Road
Chopan, Sonebhadra

H.O.: SINGH AUTOMOBILES

Lucknow Road,
Ballia (U.P.)
Ph. No. 05492-800465

ABHINAVAGUPTA ON NĀDA

Dr. R. Sathyanarayana

Abhinavagupta (Ag) is a distinguished member of human race of whom India may be justifiably proud. His genius and greatness have for transcended his own space and time.

Descended from a long line of ancestors noted for outstanding and versatile scholarship which was equalled only by total devotion to Śiva. Ag was born of yoginībhū parents (i.e. Śaivas who had attained the state of Bhairava) viz. Narasimhagupta (*alias* Chukhalaka) and Vimalakalā in the 10th cent. A.D. He was endowed with madhyatīvraśaktipāta, which is characterised by the following qualities : (a) constant, unswerving faith in Śiva (b) mantrasiddhi (c) tattvavaśitva (d) kṛtyasampada (successful completion of whatever is undertaken) (e) kavitva (peotic creativity) and (f) sarvaśāstrārtha boddhṛtva (spontaneous knowledge of all śāstras). He was a mahāmāheśvara, the highest spiritual state attainable in the pratyabhijñā śaiva darśana practice. His uncle was Vāmanagupta, his brother was Manoratha, his sister, Ambā; his cousins (sons of Vāmanagupta) were Kṣema, Utpala, Abhinava, Cakraka and Padmagupta.

Ag's versatile and profound, holistic scholarship is verified by the impressive list of his masters and śāstras he mastered under their guidance and inspiration : (1) Narasiṁhagupta (father) : grammar, logic and literature (2) Vāmanātha - dvaita śaiva tantras (3) Bhūtirāja-dvaitādvaita śaivatantra, brahmavidyā, vidyātraya, śatarudrīya (4) Bhūtirāja's son (Helārāja?) - dvaitādvaita śaiva darśana (5) Lakṣmaṇagupta - Tantraprakriyā viz. Krama, Trika, Prātyabhijñā (or Traiyambaka Śaiva), Devīpañśatikā and Śāktanyāsa (6) Śambhunātha - Kaula prakriyā (Ardhatraiyambaka Śaivādvaita), Mālinīvijayottara Tantra etc. etc. (7) Dharmaśiva - parokṣa dīkṣāguru (8) Vāmanadatta - upāyabheda (9) Udbhaṭa - another tradition of Krama system (10) Bhāskara (-Śivasūtras and Spandaśāstra (11) Aniruddha - Mataṅga Āgama (12) Indurāja - Dhvani School of Poetics (13) Bhaṭṭa Tota - Nāṭyaśāstra and Saṅgīta. Besides these, Ag mentions many more gurus without specifying their special fields of expertise : (14) Śrīcandra Śarman (15) Bhava (+ bhūti?) (16) Bhaktivilāsa (17) Yogānanda (18) Abhinanda (19) Śivaśaktī (20) Vicitranātha (21) Śrībhūtīśa (22) Candravara and (23) Śivabhakti.

Even more impressive is the list and variety of his works. The following are known to have been authored by Ag :

(1) Bodhapañcadaśikā (2) Mālinī Vijayatantra (Śripūrvaśāstra) Vārtika (3) Parātrīśikā Vivaraṇa (4) Tantrāloka (5) Tantrasāra (6) Tantravaṭadhānikā (7) Bhagavadgītārtha saṁgraha (8) Paramārthasāra (9) Īśvarapratyabhijñā-Vimarśinī (10) Īśvarapratyabhijñā-vivṛti-vimarśinī (11) Krama-Stotra (12) Dehastha-devatācakra Stotra (13) Bhairava Stotra (14) Paramārtha dvādaśikā (15) Mahopadeśa-viṁśatikā (16) Anuttarāṣṭikā (17) Anubhava nivedana (18) Tantroccaya (19) Ghaṭakarparakulaka Vṛtti (20) Kramakelī* (21) Śivadṛṣṭyālocana* (22) Pūrvapañcikā* (23) Padārthapraveśa - nirṇaya ṭīkā* (24) Prakīrṇaka vivaraṇa* (25) Prakaraṇa vivarana*

(26) Kathāmukha-tilaka* (27) Laghvī prakriyā* (28) Bhedavāda vivaraṇa* (29) Devistotra vivaraṇa* (30) Tattvādhva prakāśikā* (31) Śivaśaktyavinābhāva Stotra* (32) Bimbapratibimbavāda (33) Paramārtha saṁgraha (34) Anuttaraśataka (35) Prakaraṇastotra (36) Anuttaratattva vimarśinī (37) commentary on Yogavāśiṣṭha (?) (38) Paramārthasāra saṁgraha (39) Parmārthasāra ṭīkā (40) Spanda (41) Abhinavabhāratī (Nāṭyaśāstra vivṛti) (42) Dhvanyālokalocana (43) Nāṭyalocana* (44) Kāvyakautuka vivaraṇa*. Those marked (*) are inferred to have been written by Ag by his own references and by references by others. There is reason to believe that many more treatise were composed by Abhinavagupta which is not his actual name but a title conferred upon him by his guru/s because of his ubiquitous and versatile authoritativeness.

Ag is a rare confluence of vast scholarship, multiple genius, prolific authorship and self realisation; he combines in himself qualities which are normally regended as mutually exclusive viz. mastery of critical scholarship with high poetic creativity, profound philosophical insights with penetrative perception in art experience such as of the theatre, music, dancing and literature, perceptive and comprehensive skills in interpretation and commentary with original, independent, creative and critical thinking. Three pinnacles of his achievements rise to great heights : (1) revival and rejuvenation of Kashmir Śaivism by reorganisation (2) reinterpretation and research on the firm foundations of conceptual and empirical framework (3) firmly establishing the rasa theory of art experience propounded by Bharata by conciling and columating divergent, precedent views, converging the competitive and disparate theories of poetics such as guṇa, rīti, alaṁkāra, rasa, aucitya etc. into the dhvani theory of Ānandavardhana, so that he came to be universally acclaimed as dhvanipratisthāpanaparmācārya (even more than Ānandavardhana himself). His commentaries and interpretations are regarded as authoritative and final as the sūtra bhāṣya of the respective disciplines. The zeal, enlightenment and inspiration in the poetry of his stotras endure even today.

Thus the works of Ag, spread over some fifty years from c. 980 A.D., reflect three aspects of his towering personality : tāntrik practice, philosophical insight and aesthetic perceptions. He seems to have evolved from the aesthetic to the philosophical to the spiritual, climaxing into the Kaulasiddhi of becoming one with Bhairava as Mahāmāheśvara, under the initiation and guidance of Śambhunātha. He is traditionally believed to be an incarnation of Paraśiva Himself, and that after a sojourn of a full hundred years on earth, he entered with his 1200 disciples the Bhairava Cave (guhā praveśa) for eternal samādhi near Magam between Srinagar and Gulmarg.

Each work of Ag–little or large–is illuminated with śivabhaktī and śivadṛṣṭi. This is true of his works on art also viz. Abhinavabhāratī, Dhvanyālokalocana (and probably of Kāvyakautuka vivaraṇa). Indeed each chapter of the former work commences and closes with a śloka on Śiva with śleṣa on the respective subject matter. Ag is as much an exponent of the Śrīvidyā tantra as of the Śaivatantra. This is revealed in his commentary on the Mālinīvijaya tantra, which is also called Śrīpūrva śāstra (where `Śrī' is not merely an honorific or auspicious prefix but is descriptive of the śāstra), his Parātrīśikā vivaraṇa, Devīstotravivaraṇa, Tantrāloka, Śivaśakty-

avinābhāva stotra etc. Because of this, he has elevated art experience from the psychophysical aestheic level to the ultimate, spiritual emancipating level. The Karma, Trika, Pratyabhijñā and the Kaula systems have much in common with the theoretical and practical bases of Śrīvidyā tantra. Ag's views on art are therefore better understood and appreciated with a background knowledge of these disciplines.

However, this brief paper will be limited to the discussion of two musicological concepts expounded by Ag viz. nāda and śruti.

The Pratyabhijñā System

This system derives its name (Doctrine of Divine Recognition) from the fact that it teaches that the jīva (individual soul), originally of the nature of the Universal soul (pure, absolute consciousness) forgets this because of māyāśakti, confounds itself with body, sensorium, prāṇa etc. but may, through spiritual practices, re-cognise i.e. remember (and become) its original nature. It is a monistic philosophy, revived by Vasugupta in Kashmir in the 8th cent. A.D. through the Śivasūtras. It is composed of three streams viz. āgama (oral tradition of religious and spiritual practices, e.g. Mālinīvijaya, Svacchanda, Vijñānabhairava, Mṛgendra, Naiśvāsa, Svayambhuva, Rudrayāmala, Śivasūtra etc.) Spanda (conceptual groundwork e.g. Spandakārikā, Spandavivṛtī, Spandapradīpikā, Spanda Sandoha, Spandanirṇaya) and Pratyabhijñā (exposition, selfdefence and refutation of antagonistic system e.g. Śivadṛṣṭi, Īśvara pratyabhijñā, Pratyabhijñā vimarśinī, Pratyabhijñāvivṛti vimarśinī, Tantrāloka, Paramārthasāra, Pratyabhiñāhṛdaya etc.).

According to this system, the ultimate, universal, supreme self is Śiva who inseparably inheres Śaktī. The relationship between Śiva and Śaktī is one of difference-cum-nondifference in the sense that Śaktī is latent in Śiva before creation and manifests as a cosmogonic category in creation. The gross world is a manifestation of Śaktī, thus neither Śaktī nor the world are illusory (as posited by Advaita). Śaktī does need external aids or agencies for such manifestation of the world which may be likened to a reflection in a clear mirror, which is Śiva, except that for such reflection Śiva does not have to depend on external light or external object. Further, like the mirror which is independent of the image, Śiva remains pure, absolute and untainted. This aspect of Śiva i.e. Śaktī is therefore designated as Svātantrya (independence). Therefore, Śiva does not need, for creation, a material cause as the Īśvara of Naiyāyikas does, or an instrumental cause as the Prakṛti of the Sāṁkhyas does.

While engaged in cosmic creation, Śaktī is revealed in five aspects : cit (consciousness), ānanda (bliss), icchā (desire), jñāna (knowledge) and kriyā (action). The cosmos, before creation is latent in Śiva like the many hued peacock in its egg, or the nyagrodha tree in its seed. Only the cit aspect predominates in Śiva in this phase. Even as an artist cannot contain within himself the over flowing bliss of creativity, but has to express it through his artistic creation, so does Śiva desires to (icchā) create the cosmos in his state of ānanda. Just as the artist has only a nebulus idea of his creation at the beginning, Śiva has only a vague concept of the cosmos first. This phase is known as Sadāśiva. When this becomes more and more clear, this categoy is called Īśvara; because of a clear knowledge of the cosmos in Śiva at this

stage, this aspect of Śaktī is known as jñāna, rather, jñāna predominates in Śiva in this phase. Śiva thus transits from consciousness of `I' to that of `This' (the world) as a separate, yet not separate entity. When there is a clear polarisation of these two in consciousness, the state is said to be Īśvara, when there is an equilibrium or balance between `I' and `This' in the consciousness, it is called Śuddhavidyā. Action (kriyā) becomes dominant in this phase.

With the dominance of kriyā, māyā emerges from consciousness; it veils the true nature of Śiva and progresses in five phases, called kañcukas : kalā, vidyā, rāga, kāla and niyati, which limit the individual consciousness from omnipotency, omniscience, perfection, eternality and independence (or lordship) to finite power, finite knowledge, imperfection, transience, spatiotemporal finiteness and causality respectively. At this point the jīva becomes aware of individuation, discreteness and plurality, and is then called puruṣa, aṇu, paśu etc.

After such distancing by the kñcukas, the remaining cosmic principle is called Prakṛti, which is constituted of a qualitative triad viz. sattva, rajas and tamas. Prakṛti in turn gives rise to the principles of psychic triad viz. buddhi (intelligence), ahaṁkāra (ego) and manas (mind), together called antaḥkaraṇa. These stratify consciousness into a gross awareness of object (manas), egoistic relational attitude (ahaṁkāra) and discriminative knowledge (buddhi). Ahaṁkāra then projects a psychophysical field of activity by progressively generating five organs of sensation (jñānendriyas) viz. ghrāṇa (smell), rasana (taste), cakṣu (sight), sparṣa (touch) and śrotra (hearing), five organs of activity (karmendriyas) viz. vāk (speech), pāṇi (hands), pāda (feet), pāyu (anus) and upasthā (generative organ) and the five subtle elements (tanmātras) viz. śabda (sound), sparśa (touch), rūpa (visual form), rasa (taste) and gandha (smell). These organs and sensorium represent the powers that abide in them and not their gross, physical forms. From the subtle elements emerge the five gross elements viz. ākāśa (ether), vāyu (air), tejas (fire), ap (water) and pṛthvi (earth). These in permutation and combination, constitute the entirety of the objective world. These thirtysix principles from Śiva to Pṛthvī constitute the corpus of cosmic evolution (unmeṣa) and involution (nimeṣa) according to the Pratyabhijñā system.

The jīva is thus bound with three impurities viz. āṇava, māyā and kārma. Āṇava is the innermost sheath of impurity; māyika mala accrues from the six kañcukas, while the kārma mala results from the totality of the impressions of activity in which he engages. Liberation of these three does not constitute mokṣa. Realisation of his svātantrya and perfection is mukti which needs the grace of Śiva. This involves ethical and spiritual practices viz. āṇava upāya consisting of religious/ spiritual activity (kriyā) such as japa, arcana and homa, śākta upāya in which jñāna dominates [the practitioner tries to indentify himself with Śiva and to feel that the cosmos is a product of his unmeṣa (extroversion)] and śāmbhava upāya in which his icchā (or saṅkalpa) dominates and leads him to self-realisation.

The Pratyabhijñā darśana eclectically includes many other philosophical systems. For example, the cārvāka is included in dehādhyāsa of the jīva, or in the upaniṣadic prāṇādhyāsa; adhyāsa of buddhi includes the Vaiśeṣika stance. The twenty four categories of the Sāṁkhya are embraced and exceeded in Pratyabhijñā.

An instance of Ag's endeavour to bridge the spiritual and artistic experiences may be offered through an analogy he gives from Pratyabhijñā : A woman in love may have fetched her lover with difficulty through a messenger; he may have even come in response to her call; she may be eager and anxious for the union. An appropriate and secret rendezvous, atmosphere etc. may also be available. But unless she recognises him to be her lover, and as long as she feels he is a stranger, there is no possibility of the reunion.

Abhinavagupta on Nāda

Ag's philosophical and aesthetic theories of Nāda are based on the Pratyabhijñā Śaiva darśana, rather than on the autonomy of the music experience or on the Nāṭyaśāstram. Bharatamuni regards music as ancillary to nāṭya (total theatre); the Nāṭyaśāstram is a handbook for the practical exponents of the various theatrical arts and not a theatrical treatise and so does not engage in dialectic or polemical discussions, definitions etc. Therefore, Ag's scope as a commentator is defined by this limitation of his exemplar text. He uses the word `nāda' only on two occasions in his commentary on the 28th ch. of the Nāṭyaśāstram. This will be mentioned later in this section.

Ag and Mataṇga[2] share the same views on nāda except that the latter, being an exponent of the Śākta (Śrīvidyā) tantra (probably of Kādividyā) derives it directly from Śākti whereas Ag goes a step higher in the doctrinal heirarchy, derives it from Śiva, based on his own works Tantrāloka. Parātrīśikā Vivaraṇa. Śrīpūrvaśāstra vārtika, Īśvarapratyabhijñāvivṛtivimarśinī etc. which in turn were based on Parātrīśikā, Vijñānabhairava, Kulagahvara Mālinīvijaya etc. Ag and Mataṅga have another point in common : they both consider nāda both as pure sound (latent or undifferentiated as well as inarticulate dhvani) and as sound which is differentiated and articulated by letters. According to both, the experience of nāda is not merely sensuous or aesthetic; it is transcendental, culminating in ānanda.

The concept of nāda in the Śivādvaita Pratyabhijñā darśana is intimately related to the three component theories of the system : (a) theory of reflection (bimba-pratibimba vāda), (b) theory of word and meaning (vācaka-vācya) and (c) theory of unity of the ultimate in all its multiplicity. The first teaches that the referential universe is related as a reflection (of any object) to a mirror. The second proposes that the entire universe may be regarded as consisting of only sounds which express objects (vācaka) and object expressed by the words (vācya). The third postulates that the ultimate viz. Śiva is of the nature of the light of pure, universal, absolute consciousness (Prakāśa, Saṁvit), inseparably one with the (creative) power of extroversion (vimarśa, svātantrya, nāda, ānanda, parāvāk, Śakti etc.).

The bimba-pratibimba Vāda may be further resolved into three components viz. metaphysical, epistemic and aesthetic. The metaphysical component argues that despite the multiplicity of the reflections (the universe), the ultimate Śiva remains unaffected in his oneness. He is, because of his svātantryaśakti, independent of external object and external light and multiplicity of reflections. The epistemic component argues that perception is due to, not direct contact with a healthy sense organ (aduṣṭendriya-saṁnikarśa) but due to the reflection of the object in saṁvit (non-different from I-consciousness) and in buddhi (as different from it, as object)[3]. From the aesthetic stand point, the presented objective experiences as in drama or

music involve pleasure-sorrow elements (or saṁvādi-vivādi elements in music, this appears to contradict the Pratyabhijñā postulate that the extroversive, referential aspect of Śiva viz. Śakti is synonymous with ānanda, pure bliss, which would render all worldly experiences blissful, which is not true. This is explained by distinguishing mundane experiences which are utilitarian, purposive and related to the limited I-consciousness of the individual self from the aesthetic, which are the very opposite. In the former, the object is reflected in the individual self but in the latter in the deindividualised (sādhāraṇīkṛta) self where there is no objective purposiveness or utilitarian element. So the object is not experienced as pleasant or unpleasent. It merely stirs up (spanda) the universalised consciousness of the ultimate self and so brings out its true nature, which is ānanda[4]. Thus Ag raises the aesthetic experience in music to the transcendental level and defines the sahṛdaya as an aesthete who can rise to the vimarśa or ānanda level of consciousness above that of adhyāsa of deha, indriya, buddhi and prāṇa etc.[5]

Ag sets forth nāda as a basic cosmic principle, in the third āhnika of his Tantrāloka : vācya (objective manifestation) is dominated by prakāśa (illumination of pure, absolute, universal consciousness, bindu, cit, saṁvit) and Vācaka (sound expressing object) by vimarśa[6]. The state of their equlibrium or balance attained during the process of creative extroversion is called nāda (or paranāda, parāvāk). Even when it manifests in the multiform principle of life (vācya) as jīvakalā, its svātantrya is intact,[7] this is true of vācaka also, the latter is śabda or parāvāk since it holds the vācya (universe) to be identical with it. The entire universe and the corresponding expressive sounds and thoughts abide in the parāvāk as a seed. It manifests in progressively grosser states in the form of paśyanti, madhyamā and vaikharī. While parā vāk exists in all beings identical with the supreme I-consciousness and transcending body, mind, intellect etc., very subtle, faint differentiation is perceptible (`paśyantī') between sound and the idea. In madhyamā, so called because it lies between the subtle and the gross sound, there is just mental awareness of the expressive sound as distinct from the idea. In vaikharī the expressive sound is totally gross, distinct from the idea or thought and clearly articulated into letters in the physical speech organs.[8]

Every philosophical system in India admits only the word as a semantic mode and therefore engages itself with the word in relation to the object. This is true of the Śākta darśanas also including the Pratyabhijñā and Śrīvidyā tantras. Sound is treated as meaningful only when articulated in letters and syllables. Unarticulated sounds, as of musical instruments, thunder or of other phenomenological origin are regarded as not developed enough for the purpose and as a phase of its evolution. In other words, they are held to belong to a stage of latency or potentiality. Such sound, unarticulated into meaningful words, is called dhvani in musical parlance, as is done by Mataṅga[9] and by Ag[10]. Another musical analogy for latency or potentiality for expressed sound consists of the antaraśrutis postulated by Viśvāvasu.[11] According to the śikṣās and saṅgīta śāstra the vocal musical notes (svaras) are produced by the passing of the air (from the five regions navel, chest, throat, mouth and palate) through the organs of the speech; they are not articulated in the sense of letters, but are distinguished by the relative `high'ness or `low'ness. But the Śaivadarśana regards them as inarticulate;

the aesthetic quality or beauty of the melodic situations (svarasandarbha) arises from the fact of their indivisibility or inexpressibility into letters in ālāpa, and the svaras are therefore said to be nāda in the state of paśyantī.[12] Each of Paśyantī, madhyamā and vaikharī is further divided into gross (sthūla), subtle (sūkṣma) and transcendental (parā). The vocal svaras belong to gross paśyantī. They are sweet because they are not articulated, for, articulation produces harshness.[13] In a similar way, the musical sounds produced on percussive instruments like mṛdaṅga are postulated to belong to the phase of sthūla madhyamā nāda,[14] because, while those generated on the chordophones or aerophones are clearly distinguishable as saḍja etc., these on the percussives cannot. Because the paśyantī and madhyamā (both sthūla) phases embodied in vocal and instrumental music have their immediate origin in parā nāda, and are also potential with regard to their transcendental (parā) state, the aesthetic element in music becomes transcendental, full of ānanda. The musical notes actually produced by voice or instrument are the products of activity i.e. kriyāśaktī and are therefore sthūla in nature. The desire to produce them and their mental formulation or ideation correspond to the icchā śaktī and jñāna śaktī respectly and therefore to the parā and sūkṣma states respectively. When, as in gīta (song) there are both dhātu (vocal svaras) and mātū (words), the expression is, of course vaikharī.[15] Here also the subtle and transcendental phases are present as psychological processes of desire (motivation) and ideation and therefore rooted in the parā phase and parā nāda; so the experience is elevated to the transcendental i.e. the I-consciousness of Śiva.

References

1. For an excellent and detailed study of the life and work of Abhinavagupta see Navjivan Rastogi, Introduction to the Tantrāloka : A Study in Structure; Pandey, K. C., Abhinavagupta, An Historical and Philosophical Study; idem, Comparative Aesthetics, Vol. I : Indian Aesthetics; Nagarajan, K. S. Contribution of Kashmir to Sanskrit Literature; Raghavan, V. Abhinavgupta and His Works.
2. Mataṅga, Bṛhaddeśī, 5, p. 2; 19ff. p. 6.
3. Abhinavagupta, Tantrāloka, vol. 2. Āhnika 3, 69-70.

   अतएव पुरोवर्तिन्यालोके स्मरणदिना।
   निमित्तेन घनेनास्तु सङ्क्रान्तदयिताकृतिः।।
   अन्यथा संविदारूढा कान्ता विच्छेदयोगिनी।
   तस्माद्भाति न वै संविद्विच्छेदं पुरतो गता।।
   अत एवान्तरं किञ्चिद्धीसंज्ञं भवतु स्फुटम्।
   यत्रास्य विच्छिदाभानं सङ्कल्पस्वप्नदर्शने।।

4. ibid. loc. cit. 208-211.

   शब्दोऽपि मधुरो यस्माद्वीर्योपचयकारकः।
   तद्धि वीर्यं परं शुद्धं विसिसृक्षात्मकं मतम्।।

   (comm.) एवं यदि एषां परब्रह्मरूपत्वं न स्यात् तत्तदवहितचेतसां कथं नाम तद्विकासो भवेदिति भावः।

   तथा हि मधुरे गीते स्पर्शे वा चन्दनादिके।
   माध्यस्थ्यविगमे याऽसौ हृदये स्पन्दमानता।।
   गीतादिविषयास्वादसमसौख्यैतात्मनः।
   योगिनस्तन्मयत्वेन मनोरूढेस्तदात्मना।।

5, ibid. loc. cit. 228.

   येषां न तन्मयीभूतिस्ते देहादिनिमज्जनम्।
   अविदन्तो मग्नसंविन्मानास्त्वहृदया इति।।

6. ibid. loc. cit. 74 इह हि विश्वस्य वाच्यवाचकात्मना द्विधा अवभासः।

तत्र प्रकाश एव प्राधान्येन वाच्यात्मकविश्वरूपत्वेन परिस्फुरति इति

विश्वजित्प्रतिबिम्बत्वोट्टङ्कनेनोक्तम्। विमर्शोऽपि तत्तद-नुत्तरानन्दाद्यमर्शात्मनोदेति।

Cf. Bhāskarī vol. i. 119 : चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक्स्वरसोदिता।

7. Abhinavagupta, op. cit. loc. cit. 116, 117 :

अत्रानुत्तरशक्तिः सा स्वं वपुः प्रकटस्थितम्।

कुर्वत्यपि ज्ञेयकलाकालुष्याद् बिन्दुरूपिणी।।

8. ibid. loc. cit. 225.

सैव हि परमेश्वरी स्वस्वातन्त्र्याद् बह्वीरूपतां उल्लिलासयि-षुर्वाच्यवाचकक्रमानुदयाद् विभागस्यास्फुटत्वाच्चिज्ज्योतिष एव प्राधान्याद् दृष्टरूपतया पश्यन्तीति शब्द व्यपदेश्या। तदनु वाच्यवाचकक्रमस्य आसूत्रितविभागत्वेऽपि स्फुटास्फुटरूपत्वेन बुद्धिमात्रनिष्ठतया दर्शनप्राधान्याद् दृष्टदृश्योरन्तरालं वर्तित्वेन मध्यमापदवाच्या। ततोऽपि स्थानकरणप्रयत्नबलात् तत्तद्वर्ण-क्रमोपग्रहाद् विभागस्य स्फुटत्वाद् दृश्यस्यैव प्राधान्याद् विखरे शरीरे भवत्वाद् वैखरीशब्दाभिधेया।

9. Mataṅga, op. cit. 3, p. 2; 12, 13, p. 4.

10. Abhinavagupta, Abhinavabhāratī, comm. on Bharata, Nāṭyaśāstram, 28.21, pp. 11, 13.

तत्रोत्तरं-भवेदेवं, यदि ध्वनिनादसंज्ञिताः श्रुतय एव नियतश्रुत्यन्तरत्वेन गृह्यमाणा स्वरा इति। (p. 11)

तावती श्रुतिरेका परमाण्वनुस्थाने ख्यापितापि तस्या लक्षणीयत्वात् दत्तिलाचार्योऽपि ध्वनिशब्देनानुस्थानमेवाभ्यधात्—"षड्जत्वेन गृहीतो यः षड्जग्रामे ध्वनिः"

Ag has designated such sound as `śabda' once in the Dhvanyālokalocana, comm. on Ānandavardhana, Dhvanyāloka, 1.7, p. 42 : श्रुतिर्नाम शब्दस्य वैलक्षण्यकारि .....

He has done so, evidently to avoid using the word `dhvani' which is used in the sense of poetic suggestiveness by Ānandavardhana. For his definition of śruti as dhvanivailakṣaṅya, see below : Abhinavagupta on śruti.

11. Viśvāvasu, cit. Mataṅga, op. cit. Anuvāka 2, p. 10.

12. Abhinavagupta. Tantrāloka, vol. 2, Āhnika 3, 226.

तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी।

सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णाद्यप्रविभागतः।

13. ibid., loc. cit. 227 :

अविभागैकरूपत्वं माधुर्यं शक्तिरुच्यते।

स्थानवाय्वादिघर्षोत्था स्फुटतैव च पारुषी।।

14. ibid., loc. cit. 228.

यत्तु चर्मावनद्धानि किञ्चित् तत्रैष यो ध्वनिः।

स स्फुटास्फुटरूपत्वान्मध्यमा स्थूलरूपिणी।।

15. ibid., loc. cit. 230.

या तु स्फुटानां वर्णानामुत्पत्तौ कारणं भवेत्।

सा स्थूला वैखरी यस्याः कार्यं वाक्यादि भूयसा।।

अभिनव गुप्त की दृष्टि में नाद

(डॉ० आर० सत्यनारायण)

संपादककृत सार-संक्षेप

प्रस्तुत निबन्ध में डॉ० सत्यनारायण ने 'नाद' के विषय में अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। स्थान की सीमाओं के कारण नादार्चन के इस अंक में उक्त निबन्ध का अर्धांश ही छप सका है। नादार्चन के आगामी अंक में यह निबन्ध पूर्ण होगा और वहीं पर सम्पूर्ण निबन्ध का 'सार-संक्षेप' प्रस्तुत किया जायेगा।

•

बहुधा लोग यह कहते हैं कि वे यह जानते हैं कि वे क्या पसन्द करते हैं जब कि वे अधिकांशतः वही पसन्द करते हैं जो वे जानते हैं।

— जे. आइ. जेम्स

हमारे लेखक—रचनाकार

— डॉ० अर्चना दीक्षित
एच-6, जोधपुर कालोनी,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

— डॉ० जय चन्द्र शर्मा
निदेशक, श्री संगीत भारती,
औद्योगिक क्षेत्र, रानी बाजार,
बीकानेर (राज०)-334001

— डॉ० दीप्ति बंसल, 145, थापर नगर
लेन नं० 3, मेरठ सिटी–250001.

— डॉ० पुष्पा बसु
संगीत व मंचकला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005.

— डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित
एच/6, जोधपुर कालोनी
का० हि० वि० वि० वाराणसी-221005

— डॉ० मुकेश गर्ग
D–58, महेन्द्रू एन्क्लेव (II फ्लोर)
जी० टी० करनाल रोड, दिल्ली–110033

— प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा
न्यू कालोनी, डाक बंगला रोड
बेतिया, प० चम्पारण–845438

— श्री शिवसेवक त्रिपाठी
ग्राम–सुमेरपुर, डाक–झूँसी (छिवैया),
इलाहाबाद (उ० प्र०)

— डॉ० सुभद्रा चौधरी, एल/28, टीचर्स फ्लैट
न्यू हैदराबाद कालोनी, बी०एच०यू०
वाराणसी–221005

— डॉ० विमला मुसलगाँवकर
13, दीनदयाल नगर, (कबीर नगर के पास)
वाराणसी

— प्रो० आर० सत्यनारायण
सीएच० 12, 9वाँ क्रास,
जयनगर, मैसूर–570014

Our Contributors

— Dr. Archna Dixit
H-6, Jodhpur Colony,
B.H.U., Varanasi–221005

— Dr. Jai Chandra Sharma
Director, Shree Sangeet Bharti,
Industrial Area,
Rani Bazar, Bikaner (Raj)–334001

— Dr. (Ms.) Deepti Bansal
145, Thapar Nagar
Lane No. 3, Meerut City–250001

— Dr. Pushpa Basu
Faculty of Performing Arts
B.H.U., Varanasi–221005,

— Dr. Pradeep Kumar Dixit
H-6, Jodhpur Colony,
B.H.U., Varanasi–221005

— Dr. Mukesh Garg
D–58, Mahendru Enclave (II Floor)
G.T. Karnal Road, Delhi–110033

— Prof. Ravindra Nath Ojha
New Colony, Dak Bungalow Rd.
Bettiah, W. Champaran–845438

— Shri. Shivsewak Tripathi
Village–Sumerpur,
P.O.–Jhusi (Chhivaiya), Allahabad (U.P.)

— Dr. Subhadra Chaudhary
L/28, Teachers Flat
New Hyderabad Colony, B.H.U.,
Varanasi–221005.

— Dr. Vimala Musalgaonkar
13, Deendayal Colony
(Near Kabirnagar), Varanasi.

— Prof. R. Sathyanarayana
Ch. 12, 9th Cross, Jaynagar
Mysore–570014

'नादार्चन' परिवार की सानुताप श्रद्धा स्मरणाञ्जलि

भारतीय संगीत के पुरोधा, ठुमरी के महान जादूगर

पं० महादेव मिश्र

को, जो अब हमारे बीच नहीं रहे ।

'नादार्चन-संगीत वार्षिकी'—1991 प्रवेशाङ्क की विषयवस्तु

1. आशीर्वाद एवं प्रेरणाएँ
2. प्राक्कथन
3. मौन साधना का एक मुखर स्वर : डीरेका के बंगाली बाबा — श्री आलोक प्रियदर्शी
4. मानव-जीवन का परम इष्ट : नाद-साधना — श्री विजय कृष्ण जोशी
5. हमें देखना है कि..... — डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग'
6. संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि — श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
7. सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक—हमारा शास्त्रीय संगीत — डॉ० ऋत्विक सान्याल
8. भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति — डॉ० विमला मुसलगाँवकर
9. संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति : एक घातक विडम्बना — स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
10. संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय — श्रीमती गिरिजा देवी
11. भारतीय संगीत में 'घराना' की अवधारणा — डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
12. भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा उसका गणितीय विश्लेषण — डॉ० केदारनाथ भौमिक
13. भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन : एक विहंगम दृष्टि — डॉ० कृष्णनाथ ओझा
14. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ
15 हमारे सांस्कृतिक क्रिया-कलाप
16. एक सुमन-शुभाशीष की याचना में — श्री शिव सेवक त्रिपाठी

'नादार्चन-संगीत वार्षिकी'—1992 की विषयवस्तु

1. शुभकामनाएँ
2. सम्पादकीय
3. नादार्चन-प्रवेशांक—प्राक्कथन (1991)
4. प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तःसम्बन्ध — डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार

5. खयाल-गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण	डॉ० आर० व्ही० कविमण्डन
6. 'धातु' संगीत में 'इण्टरडिसिप्लिनरी' अध्ययन का उदाहरण	डॉ० सुभद्रा चौधरी
7. कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में	स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
8. अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख	डॉ० राय आनन्द कृष्ण
9. जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत	डॉ० श्रीमती कमल जैन
10. ध्रुपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव	डॉ० जयचन्द्र शर्मा
11. संगीत : मेरी दृष्टि में	प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा
12. दास्ताने तवायफ़ : ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत-साधिकाएँ	श्री गजेन्द्र नारायण सिंह
13. संगीतशास्त्र में विज्ञान	डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा
14. रंगों की पृष्ठभूमि : सांगीतिक सात स्वरों के रंग	डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
15. सांगीतिक समस्याएँ	डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित
16. कला के क्षेत्र में रसानुभूति	डॉ० विमला मुसलगाँवकर
17. काव्यांजलि	श्री शिवसेवक त्रिपाठी
18. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ	

नादार्चन-संगीत वार्षिकी—1993 की विषयवस्तु

1. देवी-स्तुति	पं० बलवन्त राय भट्ट 'भावरंग'
2. शिव-शक्ति विमर्श	विजय कृष्ण जोशी
3. अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख	डॉ० राय आनन्द कृष्ण
4. जैन-वाङ्मय का संगीत-पक्ष	डॉ० कमल जैन
5. सांगीतिक स्वरों की जन्मतिथि, नक्षत्र आदि	डॉ० जयचन्द्र शर्मा
6. विश्वविद्यालय स्तर पर संगीत-शिक्षा का मूल्यांकन	डॉ० अर्चना दीक्षित
7. भारतीय शास्त्रीय संगीत में तन्त्र वाद्यों की भूमिका एवं सम्बद्ध उल्लेखनीय परिदृश्य	जय प्रकाश सिंह 'सुरमणि'
8. संगीत और योग	आशीष चटर्जी

9. स्वर-साधना — डॉ० भुवनेश्वर तिवारी
10. The Tone Poet — Dr. Subhadra Choudhary
11. Sangeet Rai Anushtup Chakravarti Bhava Bhatt : An Extraordinary Personality in the Field of Music — Dr. Adi Nath Upadhyaya (Translation–J. P. Singh)
12. गीताञ्जलि — शेषमणि निगम
13. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ

नादार्चन-संगीत वार्षिकी—1994 की विषय वस्तु

1. देवि-वन्दना — शिवसेवक त्रिपाठी
2. बृहद्देशी ग्रन्थ के रचयिता मतङ्गमुनि : एक तथ्यपरक अवलोकन
   Matangamuni, The Writer of Brihaddeshi : A Factual Introduction of The Author. — डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार (Dr. Anil Bihari Beohar) Editor's Summary
3. भारतीय संगीतशास्त्र में एकाधिक अनुशासनों का योग
   Association of Various Disciplines With Indian Musicology. — प्रो० प्रेमलता शर्मा (Prof. Premlata Sharma) Editor's Summary
4. तबला के महान जादूगर पण्डित शाम्ता प्रसाद मिश्र-'गुदई महाराज'
   A Great Magician of Tabla Pt. Shamta Prasad Mishra 'Gudai Maharaja' — जयप्रकाश सिंह 'सुरमणि' (Jaiprakash Singh 'Surmani') Editor's Summary.
5. भारतीय सङ्गीत में नवीन प्रयोग
   New Experiments in Indian Music — प्रो० इन्द्राणी चक्रवर्ती (Prof. Indrani Chakravorty) Editor's Summary.
6. ताल-ध्यान और ताल-चित्र : एक प्रयोग, एक परम्परा
   Taal-Dhyana And Taal-Chitra : Eka Prayoga, Eka Parampara — डॉ० गुलशन सक्सेना (Dr. Gulshan Saxena) Editor's Summary.
7. ब्राह्मी सङ्गीत
   Brahmi Sangeet — प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा (Prof. Ravindra Nath Ojha) Editor's Summary.
8. Ideal Audience and Critic
   आदर्श प्रेक्षक एवं समालोचक — (Dr. Ritwik Sanyal) डॉ० ऋत्विक सान्याल सम्पादककृत सार-संक्षेप
9. खयाल गायन के प्रमुख घरानों की प्रतिनिधि रचनाएँ
   The Representative Compositions of the Main Khayal Gharanas — डॉ० रामचन्द्र व्ही कविमण्डन (Dr. Ramchandra V. Kavimandan) Editor's Summary.

हमारे सांस्कृतिक क्रियाकलाप

1988 के कार्यक्रम

गायन—श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—सुश्री दीप्ति बनर्जी
नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र तथा श्री सामता मिश्र
स्वतन्त्र तवला वादन—श्री लक्षू महाराज

1989 के कार्यक्रम

गायन—श्री अजीत भट्टाचार्य
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—श्री बादल महाराज
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
गायन—श्री छन्नू लाल मिश्र
कथक नृत्य—सुश्री उर्मिला शर्मा
तबला संगतकार—पं० लक्षू महाराज, श्री सत्यनारायण सिंह
हारमोनियम—श्री परशुराम पाण्डेय, श्री विनोद लेले
सारंगी—श्री गणेशजी

1990 के कार्यक्रम

शहनाई—नैयर खाँ (सुपुत्र बिस्मिल्लाह खाँ)
गायन—पं० छन्नूलाल मिश्र
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
कथक नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र, श्री सामता मिश्र
गायन—श्री प्रदीप कुमार, श्री सत्यनारायण सिंह
सितार—सुश्री रक्तिमा सरकार
कथक नृत्य—सुश्री सोनाली मुखर्जी
स्वतन्त्र तबला वादन—पं० लक्षू महाराज
तबला संगतकार—पं० ईश्वरलाल मिश्र, श्री कुबेर मिश्र, श्री किशोर मिश्र
हारमोनियम—श्री ध्रुवजी
सारंगी—श्री गणेशजी, श्री सन्तोषजी

1991 के कार्यक्रम

शहनाई—श्री रमाशंकर एवं साथी
सितार—डॉ० रक्तिमा सरकार
गायन—डॉ० ऋचा जौहरी
युगलबंदी—डॉ० रामू शास्त्री (वायलिन) एवं श्री अमरनाथ मिश्र (सितार)
युगल कथक नृत्य—श्री माताप्रसाद एवं श्री रविशंकर
वृन्द वादन—मैहर वाद्य वृन्द (संस्थापक-अलाउद्दीन खाँ)
गायन—श्रीमती मंगला तिवारी
सरोद—श्री विश्वजीत राय चौधरी
तबला संगतकार—श्री लक्षू महाराज, श्री ईश्वर लाल मिश्र, श्री कुमार लाल मिश्र
श्री रघुनाथजी, श्री किशोर लाल मिश्र, श्री विनोद लेले
हारमोनियम—श्री ध्रुवजी
सारंगी—श्री बच्चालाल मिश्र, श्री संतोष मिश्र
'नादार्चन संगीत वार्षिकी' का लोकार्पण – द्वारा डॉ० विद्यानिवास मिश्र

1992 के कार्यक्रम

सितार—डॉ० रक्तिमा सरकार
तबला वादन—श्री धनंजय मिश्र
युगल गायन—श्री अमरनाथ मिश्र एवं श्री पशुपतिनाथ मिश्र
युगल वादन—श्री अमरनाथ मिश्र (सितार) एवं श्री रमाशंकर (शहनाई)
सितारवादन—श्री कृष्ण कुमार मुखर्जी
गायन—श्री देवाशीष डे
कथक नृत्य—श्री मधुकर आनन्द
सरोद वादन—श्री जयदीप घोष
तबला संगतकार—श्री लक्षू महाराज, श्री पुण्डरीक कृष्ण भागवत, श्री ईश्वर लाल मिश्र,
श्री जे० मैस्सी, श्री विनोद लेले, श्री कुमार लाल मिश्र
'नादार्चन संगीत वार्षिकी' का लोकार्पण – द्वारा डॉ० प्रेमलता शर्मा

1993 के कार्यक्रम

शहनाई—श्री रमाशंकर
सितार—डॉ० रक्तिमा सरकार
गायन—श्रीमती मंजू सुन्दरम्
युगल कथक नृत्य—कु० अनुपमा सेठ, कु० रत्ना गुप्ता
सितार—पं० अमरनाथ मिश्र
युगल गायन—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित एवं डॉ० अर्चना दीक्षित

कथक नृत्य—सुश्री उर्मिला शर्मा

सितार—श्री राजेश शाह

तबला संगतकार—सर्वश्री लक्षू महाराज, छोटेलाल मिश्र, विनोद लेले, पुंडरीक कृष्ण भागवत, ईश्वर लाल मिश्र, पूरन मिश्र, कैलाश निषाद, अशोक पाण्डेय

सारंगी संगतकार—पं० हनुमान प्रसाद मिश्र, पं० बच्चालाल मिश्र

पखावज—श्री रवि उपाध्याय

हारमोनियम—सर्वश्री शुकदेव भट्ट, राहुल भट्ट

'नादार्चन संगीत वार्षिकी' का लोकार्पण—द्वारा पं० किशन महाराज

1994 के कार्यक्रम

दुर्गा स्तुति—डॉ० भुवनेश्वर तिवारी

गायन—श्री देवाशीष डे

कथक नृत्य—श्री माता प्रसाद मिश्र एवं श्री रविशंकर मिश्र

वाद्य संगीत—श्री सैण्ड्रो मैरिओट्टी (सैक्सोफोन), पंडित शिवनाथ भट्टाचार्य (गिटार) एवं पंडित विकास महाराज (सरोद)

तबला संगतकार—श्री लक्षू महाराज एवं श्री विनोद लेले

हारमोनियम संगतकार—पंडित शुकदेव भट्ट

गायन संगतकार—श्री प्रेमकिशोर मिश्र

पखावज संगतकार—श्री चन्द्रशेखर जी

'नादार्चन संगीत वार्षिकी' का लोकार्पण – द्वारा डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

1995 के कार्यक्रम

नादार्चन-पर्व-समारोह

'नदार्चन-संगोष्ठी'

,नादार्चन संगीत-वार्षिकी' के निरन्तरता के साथ पाँच वर्ष पूर्ण करने के उपलक्ष्य में नादार्चन-पर्व-समिति तथा डीरेका सांस्कृतिक परिषद् के संयुक्त तत्वावधान में 'नादार्चन संगोष्ठी' का आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का उद्घाटन मुख्य अतिथि माननीय डॉ० हरि गौतम कुलपति, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय ने किया।

कार्यक्रम-विवरण

उद्घाटन सत्र

मंगल गान—डॉ० ऋत्विक सान्याल

प्रासंगिकी—डॉ० कमल जैन

प्रथम प्रस्तुति—प्रो० रवीन्द्र नाथ ओझा

अध्यक्षीय-प स्बोधन—प्रो० विद्यानिवास मिश्र

मध्य सत्र

प्रथम प्रस्तुति—डॉ० (श्रीमती) चेतना जे० ब्यौहार
द्वितीय प्रस्तुति—डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर
अध्यक्षीय-संबोधन—डॉ० राय आनन्द कृष्ण

समापन सत्र

प्रथम प्रस्तुति—डॉ० सुभद्रा चौधरी
द्वितीय प्रस्तुति—पं० बलवन्त राय भट्ट
अध्यक्षीय-संबोधन—प्रो० प्रेमलता शर्मा

'नाद-गुंजन'

'नादार्चन संगीत-वार्षिकी' के निरन्तरता के साथ पाँच वर्ष पूर्ण करने के उपलक्ष्य में नादार्चन-पर्व-समिति तथा डीरेका संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में सांस्कृतिक कार्यक्रम 'नाद-गुञ्जन' का भी आयोजन किया गया ।

समारोह की अध्यक्षता माननीय श्री राजेन्द्र कुमार जैन (महाप्रबंधक, डीरेका) ने तथा मुख्य अतिथि का आसन प्रो० विद्या निवास मिश्र ने सुशोभित किया ।

- उद्घाटन—माननीय मुख्य अतिथि प्रो० विद्यानिवास मिश्र
- अध्यक्षीय उद्बोधन—माननीय श्री राजेन्द्र कुमार जैन
- नादार्चन संगीत-वार्षिकी का लोकार्पण—माननीय मुख्य अतिथि के कर-कमलों से ।
- माननीया प्रो० प्रेमलता शर्मा का अभिनन्दन

मंचीय प्रस्तुतियाँ

- वायलिन वादन—श्री आशीष चटर्जी
- गायन—डॉ० चित्तरंजन ज्योतिषी
- कथक नृत्य—डॉ० (श्रीमती) चेतना जे० ब्यौहार
- संगतकार :—तबला—श्री कुबेर नाथ मिश्र एवं श्री विवेक देशमुख
  सारंगी—श्री संतोष कुमार मिश्र
  बाँसुरी—श्री मुज्तबा
  हारमोनियम—श्री रामचन्द्र ह्वी कविमण्डन
  गायन—श्री सुरेश दुबे

यह साँझ-उषा का आंगन,
आलिंगन विरह-मिलन का ।
चिर हास-अश्रुमय आनन,
रे इस मानव-जीवन का ।

—सुमित्रानंदन पंत

नादार्चन के सम्बन्ध में कुछ भावाभिव्यक्तियाँ

(सम्पादक को सम्बोधित)

शुभाशंसनम्

पत्रिका आत्पत्रा स्यात् मुदिताः सन्तु गायकाः ।
संवादिनो वादकाः स्युः स्वस्था नृत्यन्तु नर्तकाः ।

गजानन शास्त्री मुसलगांवकर

यह बड़े हर्ष का विषय है कि शारदीय नवरात्र के पवित्र पावन पर्व पर आपने संगीत की भव्य पत्रिका 'नादार्चन' के प्रकाशन का संकल्प लिया है। मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य एवं आदर्श को ध्यान में रखकर इस संगीत-पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है, वह सार्थक होगा।

—**डा० विद्यानिवास मिश्र,** वाराणसी

इस पत्रिका में क्या नहीं है, यह तो गागर में सागर है।.....इस पत्रिका की जितनी भी तारीफ की जाए, कम है।

—**स्व० पं० सामता प्रसाद मिश्र**
'गुदई महाराज', वाराणसी

जो पत्रिका इतने बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा लिखी गई हो, उसके बारे में तो इतना ही दुआ कर सकता हूँ कि यह सदैव चलती रहे।

—**उस्ताद अल्ला रक्खा,** बम्बई

इस पत्रिका में जितने भी लेख हैं, वे सभी मौलिक व शोधपूर्ण हैं। यह संगीत-पत्रिका संगीत के विद्यार्थियों व विविध कोटि के जिज्ञासुओं, सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी है।.....संगीतकारों की आने वाली पीढ़ी 'नादार्चन' के प्रति उपकृत रहेगी।

—**पं० जसराज,** बम्बई

काशी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संगीत-जगत् को ऐसी पत्रिका की सख्त आवश्यकता थी। इस पुनीत कार्य के लिए सम्पादक डॉ० आदिनाथ उपाध्याय साधुवाद के पात्र हैं।

—**श्रीमती गिरिजा देवी,** वाराणसी

'नादार्चन' का प्रकाशन संगीत-जगत् के लिए एक उदात्त व अनुकरणीय उपलब्धि है। ऐसी पत्रिकाएँ ही संगीत-जगत् के लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती हैं।

—**पं० किशन महाराज,** वाराणसी

यह पत्रिका बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। संगीत जगत् को आज एसे ही प्रकाशन की आवश्यकता है, जिससे लोगों को तात्विक ज्ञान मिले। गायन-वादन-नृत्य तो हर जगह सुलभ हो जाते हैं, परन्तु संगीत के शास्त्र पक्ष की संगीत प्रेमियों की जानकारी नहीं मिल पाती है और यह पत्रिका इस कमी को पूर्ण करने में अत्यन्त सक्षम प्रतीत हुई।

—**पं० हरि प्रसाद चौरसिया**, बम्बई

पत्रिका आकर्षक लगी। कुछ ऐसे लेख हैं जो बिलकुल नयी और रोचक बात कह रहे हैं। आशा है 'नादार्चन' के माध्यम से संगीत के ऐसे और भी नवोन्मेष आप प्रकाशित करते रहेंगे।

—**डा० मुकुन्द लाठ**, जयपुर

पत्रिका के सभी लेख विद्वत्तापूर्ण तथा संगीत-जगत् के लिए उपयोगी हैं। वर्तमान युग में ऐसी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता थी।

—**डा० जयचन्द्र शर्मा**, बीकानेर

यह वार्षिक पत्रिका अपने में बड़ी कीमती है, मालुमात का खजाना है।.....मैं अल्लाह से दुआ करता हूँ कि वह आपकी इस खिदमत को कबूल करें।

—**उस्ताद गुलाम मुस्तफा खाँ**, बम्बई

...'नादार्चन' बढ़िया ही नहीं, अपितु बहुत ही बढ़िया पत्रिका है। पारम्परिक संगीत के सम्बन्ध में जो जानकारी इस पत्रिका में है, वह सबसे अलग व रोचक है। आशा है कि भविष्य में भी यह पत्रिका नए-नए तथ्यों को प्रकाश में लाकर नई व पुरानी-दोनों ही पीढ़ियों को लाभान्वित करती रहेगी।.....

—**श्रीमती किशोरी अमोनकर**, बम्बई

'नादार्चन' अपने किस्म की बिलकुल अनूठी पत्रिका है। इसमें अधिकांश लेख ऐसे हैं, जो बिलकुल ही नई बातें कह रहे हैं। मेरा विश्वास है कि इतनी ईमानदारी से जो कार्य हो रहा है, वह सदैव चलता रहेगा।

—**पं० शिवकुमार शर्मा**, बम्बई

पत्रिका सांगोपाङ्ग देखी, सम्पादकीय सहित सभी लेख। सात्विकता की सुगन्ध, आध्यात्मिकता का आनन्द-आलोक। 'नादार्चन' संगीत वार्षिकी के माध्यम से संगीत-सेवा का आपका यह प्रयास सफल रहे, यही कामना है।

—**प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा**, बेतिया

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का प्रवेशाङ्क प्राप्त हुआ। पत्रिका का गेट-अप, छपाई आदि सभी उत्कृष्ट एवं नयनाभिराम है। सामग्री भी उपयोगी है।.....आशा है, संगीत जगत के लिए यह पत्रिका काफी लाभदायक सिद्ध होगी।

—सम्पादक, **'संगीत'** मासिक, हाथरस

'नादार्चन' का प्रवेशांक अतीत आकर्षक लगा। पत्रिका का गेट-अप सुरुचिपूर्ण है। निबन्धों का चयन आदि भी सन्तोषजनक है।.....पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करती हूँ।

—**श्रीमती उषा के० त्रिवेदी**, अहमदाबाद

पत्रिका बहुत सुन्दर है, लेखों का चयन भी बहुत सूझ-बूझ के साथ किया है। आपका सम्पादन दायित्व निर्वाह अनुकरणीय है।

—**श्री ओमप्रकाश चौरसिया,** भोपाल

नादार्चन के प्रथम अङ्क की प्रस्तुति एक सफल-सात्विक-सांगीतिक प्रयास रहा, स्तरीय और श्लाघनीय भी। उसके भावी अङ्क भी उदात्त-उन्नत होंगे, ऐसी आशा है।

—**श्री शिवसेवक त्रिपाठी,** इलाहाबाद

The 'Nadarchan' magazine has opened my eyes to the rich and great world of classical music...

—**John Simon**, Kenya

This magazine proves that India is still at the top in the field of classical music and musical manifestation.

—**Rosalinda N.**, Austria

I had never expected a magazine of 'Nadarchan' standard both in quality and quantity, at such a low price...

—**Noni' O Brien**, Ireland

'नादार्चन' के अन्तर्गत विविध कोटि के निबन्धों को पढ़कर ऐसा अनुभव हुआ कि संगीत, संस्कृत एवं दर्शन के क्षेत्र में काशी नगरी आज भी अग्रणी है।

—**डा० ए० वी० दोषी,** राजकोट

फोन : 361254

दि वाराणसी उपनिवेशन सहकारी आवास समिति लि०

D. 59/72-I महमूरगंज, वाराणसी

ऐतिहासिक नगरी काशी में भूमि व प्लाट उपलब्ध कराने हेतु

एक मात्र अग्रणी संस्था/सम्पर्क करें :

सचिव

विजय नारायण पाण्डे

कृपया ध्यान दें

लेखकों से :

— रचना 31 जुलाई 1996 तक अवश्य पहुँच जानी चाहिए।

— संगीत के साथ-साथ ललित कला तथा दार्शनिक विषय भी स्वीकृत किये जाते हैं।

— प्रकाशन के एक माह के भीतर रचनाकारों को एक प्रति तथा पारिश्रमिक भेज दिया जायेगा।

पाठकों से :

— पत्रिका की कीमत कृपया धनादेश द्वारा अथवा नगद रूप में प्रेषित करें जो व्यवस्थापक, नादार्चन, 374/ए, डी एल डब्ल्यू, वाराणसी–221004 के पक्ष में देय होगा।

— आदेश देने के एक माह के भीतर यदि पत्रिका न पहुँचे, तो व्यवस्थापक के नाम स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विज्ञापन दाताओं से :

— विज्ञापन के सम्बन्ध में समस्त प्रकार का पत्र-व्यवहार सीधे व्यस्थापक से करें।

विशेष :

— पत्रिका के व्यापक प्रचार-प्रसार में सहभागिता के लिए वितरक/पुस्तक विक्रेता सम्पर्क हेतु आमंत्रित है।

हमारा पता :

— 'नादार्चन संगीत-वार्षिकी', 374/ए, डी एल डब्ल्यू,
वाराणसी–221004
दूरभाष–0542–372637

Your Attention Please

From the Contributors :

— Article should reach summarily Latest by 31st July, 1996.

— In addition to Music, the articles on Fine Arts & Philasophical subjects are also accepted,

— A Copy of the magazine and remuneration shall be sent to the contributors with in one month of the publication.

From the Readers :

— Please pay the cost of the magazine, either in cash or by money–order, which should be payable to the Manager, Nadarchan 374/A, D,L.W., Varanasi-221004

— If the magazine does not reach to you with in one month of the submission of your order, please send a reminder in the name of the Manager.

From the Advertisement–Contributors :

— All the correspondence regarding the advertisement should be directly done with the Manager.

N. B :

— Distributors/Book Agents interested in becoming a part of our sales–network are most welcome.

Our Address :

— Nadarchan Music Annual
374/A, D.LW., Varanasi–221004
Phone–0542–372637

चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट भेजते समय **'नादार्चन'** के पक्ष में, ऐसा लिखें/इसके आगे पीछे कुछ भी न जोड़ें।

While sending the money by Cheque or DD, it should be sent in favour of 'NADARCHAN' by awainding any prefix or suffix with it.

With Best Compliments From :

PHONE : 313818 (O)
314415 (R)

Trimurti Sahkari Awas Samiti LTD.

Office N-8, 248 E-1, Newada, Sundarpur
Varanasi-5

★

Tribhuwan Singh

Secretary

Mahamanapuri Colony ITI Road, Karaudi (B.H.U.)
VARANASI-221005

नादार्चन के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ :

सविता सुर-भारती

[संस्कृति, संगीत व साहित्य के प्रति समर्पित एक संस्था]

संस्थापक : ना० गो० किजवडेकर
D 53/89, कमला कटरा
गुरूबाग, लक्सा रोड, वाराणसी
दूरभाष : 356882

रस्तोगी सजावट भण्डार

राजादरवाजा, गोविन्दपुरा, वाराणसी-221 01

(आकर्षक—मनमोहक डिज़ाइनों में हैंडीक्राफ्ट आइटम्स के निर्माता)

- माडर्न शोपीस, मूर्त्ति, मोमेंटो (स्मृति-चिह्न) आदि ।
- सिंहासन, मण्डप, फौहारा, महफिल सेट, मुकुट, छाता, जयमाल कुर्सी, राजशाही कुर्सी ।
- जीप सेट, हाथी का हौदा, रिक्सा सेट ।
- चँवर, पंखा, आशा, झंडा निशान, सोटा, बल्लम, झूला, पालना ।
- ह्वाइट मेटल के साथ-साथ एल्युमिनियम एनोडाइज व पालिश भी होता है ।
- आपके मनचाहे मेटल में माडल आदि भी बनाए जाते हैं, जैसे-लोकोमोटिव/इंजन का मॉडल आदि ।
- खेल-कूद तथा सांस्कृतिक आयोजनों में पुरस्कार व उपहार के आइटम ।

आप एक बार हमारे शोरूम में पधारकर हमें सेवा करने का मौका दें !

आपकी संतुष्टि ही हमारी उपलब्धि है

शोरूम का पता : म० नं० सी० के०, 43/45 गोविन्दपुरा, वाराणसी-221001 फोन नं० 351756

With Best Compliments From

TECHNICAL BUREAU

E/261, SHASTRI NAGAR
P. O. ASHOK VIHAR
DELHI-110052

PHONE : 7519501
FAX : 7521080

Please contact for purchase of Foreign & Indian books on :

- METALLURGY
- FOUNDRIES
- ELECTRONICS & COMPUTER
- REFRACTORIES
- ENGINEERING & TECHNOLOGY
- MANAGEMENT
- LAW
- CUSTOMS & EXCISE
- FERA ETC.
- A COMPLETE SET OF ZURAN'S WORKS
- TOTAL QUALITY MANAGEMENT & ISO–9000.

प्रकाशनाधीन

संगीत का एक अनूठा शोध-ग्रन्थ

"भावभट्ट के ग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन"

लेखक– डा० आदिनाथ उपाध्याय

पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ :

- भावभट्ट विरचित संगीत के 18 ग्रंथों का विस्तृत विवेचन। [ज्ञातव्य है कि भावभट्ट 17वीं सदी उत्तरार्ध के महान संगीतवेत्ता थे। किसी एक ग्रंथकार द्वारा संगीत के इतने ग्रन्थों की रचना किया जाना संगीत जगत के लिए एक कीर्तिमान बन गया है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ये ग्रन्थ उस समय लिखे गये जब दिल्ली के तख्त पर औरंगजेब का शासन था।]
- भावभट्ट द्वारा प्रतिपादित 'राम-रागाङ्ग' सहित राग–वर्गीकरण की अन्यान्य पद्धतियों पर विशेष दृष्टि। रागों के साथ भावभट्ट के पूर्ववर्ती वाग्गेयकारों (तानसेन आदि) सहित दुर्लभ ध्रुपद रचनाओं के उदाहरण।
- मौलिक व शोधपूर्ण सामग्री तथा उसका रोचक प्रस्तुतीकरण।
- मूल पाण्डुलिपियों के अध्ययन के आधार पर विविध विषयों का तात्विक विवेचन।
- ऐतिहासिक एवं सांगीतिक - दोनों ही दृष्टियों से संगीत के उच्च अध्ययन में रत विद्यार्थियों, शोधार्थियों, एवं गंभीर अध्येताओं के लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय संस्करण।

सम्पर्क-सूत्र :—
प्रसार - व्यवस्थापक, 'नादार्चन'
374/ए, डी०एल०डब्ल्यू०, वाराणसी - 221004
दूरभाष : 0542-372637

Regd. No. 7310

ESTD.: 1987

GOLDEN FORESTS
INDIA LIMITED
AN AGRO FORESTRY CONCERN
(A Public Limited Company)

Regd. & H.O. : S.C.O. 832-33-34,
GOLDEN COMPLEX
MANIMAJRA (U.T.)
CHANDIGARH-160101

S. K. SRIVASTAVA
Zonal Manager
Office : J 12/6 A-6, NATI IMLI,
VARANASI-221002 ★ PH. 344878

'नादार्चन' का संगीत - सेवा का व्रत सदैव चलते रहने की शुभ कामनाओं सहित :

卐

राधेश्याम पेपर स्टोर्स

कर्णघण्टा, वाराणसी

कागज के विक्रेता

फोन : 353952, 353546

Phone : 363010 (O)
362162 (R)

P. S. A. MODILUFT

TOURISTER TOUR & TRAVELS

Head Office : D - 59/80 Sigra, Varanasi - 221010
Extn. Counter : Hotel India, 59 Patel Nagar, Varanasi-221002
Phone : 342913 / Ext. 63
CONTACT FOR ALL TYPES OF TRAVEL

The Vanguard for your Prosperity

VIKRAM

The Virile and Versatile 3 Wheeler

Manufactured by - SCOOTERS INDIA LTD.
(A Govt. of India Enterprise)
Dealer : RAMAN DISTRIBUTORS
MAHMOORGANJ, VARANASI Tel - 360429

'नादार्चन' के अनवरत प्रकाशित होने की शुभकामनाओं सहित :

दी जनता सहकारी आवास समिति लिमिटेड

चितईपुर, वाराणसी

सस्ते आवासीय भूखंडों के लिए संपर्क करें।

बुकिंग प्रारंभ है :-

★ मधुबन नगर, सारनाथ, वाराणसी

★ अजमेर नगर, हरपालपुर (लोहता), वाराणसी

With Best Compliments From

RAJENDRA SINGH

MAHENDRA PRATAP SINGH

VIRENDRA PRATAP SINGH

Civil Contractor

D.L.W. VARANASI

PHONE : 372377

नादार्चन पर्व समारोह की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

प्रभाशंकर मेहता

नादार्चन पर्व समारोह की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ :

एक शुभ चिंतक

नादार्चन पर्व समारोह की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

शरद कुमार चौबे

(कॉलोनाइज़र)

अस्सी, वाराणसी

With Best Compliments From—

Ramco Industries

फोन : 46971
342235

30, Mahamandal Katra, Lahurabir,
Varanasi

INVERTER (BATTERY OPERATED GENERATOR) * STABILIZER * C. V. T. *
SERVO * U. P. S. * SYSTEM

प्रकाश म्युजिकल

CK 58/1 आसभैरो, चौक, वाराणसी

हमारे यहाँ सभी प्रकार के वाद्य यंत्रों एवं बैंड बाजे का सभी सामान व ड्रेस तथा रामलीला नाटक, नौटंकी, ड्रामा का सब सामान मिलता है।

Phone : 320323,320327
Fax : 91-542-320527

For comfortable stay in the heart of city :

HOTEL LA-RA INDIA

(a unit of KASHIKA HOTEL Industries (P) Ltd.)

For delicious Food :

AROMA RESTAURANT

(AIR CONDITIONED)

TULSI HIRA MARKET, DASHASHWAMEDH ROAD
GODOWLIA, VARANASI-221001

With Best Compliments From

SAKET ENTERPRISES

Manufacturers of Steel Fabricating Items & Approved Govt. Suppliers.

3, Rajeshwari Nagar, Sigra-Mehmoorganj Road,
Varanasi. PHONE :361839

PROP. : S.P. SINGH; M. A., LL. B.

Tel. 0542-**343014**
Fax. **348330**
344620

With Best Compliments From :

HOTEL SURYA

S. 20/51, A-5, Nepali Kothi Varuna Bridge,
VARANASI CANTT-221002 (**INDIA**)

DELICIOUS SNACKS AND FOOD TO SUIT ALL TASTE
ENJOY STEAM/BATH FACILITY ALSO.

नए युग का
हमसफ़र
अब आपके शहर में आ गई
हीरो ग्रुप की नई पेशकश

HERO WINNER
छोड़ो कल की बातें

HERO PUCH
पावर छा जाये
माइलेज पैसे बचाये

EXCLUSIVE AUTOMATED WORKSHOP IN UTTAR PRADESH :

M/S VINEET ENTERPRISES

Near Hotel Vaibhav
55, Patel Nagar, Varanasi.
PH. 45056.

OUR MOTTO IS CUSTOMER SATISFACTION.

'नादार्चन-संगोष्ठी' एवं 'नाद-गुंजन' कार्यक्रमों की सफलता के लिए
हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

कृषि एक्सपोर्ट समूह

- कृषि एक्सपोर्ट कमर्शियल कार्पोरेशन लि०
- कृषि एक्सपोर्ट हाउसिंग्स लि०
- कृषि एक्सपोर्ट ओवरसीज (इण्डिया) लि०
- कृएक्स मोनेटरी सर्विसेज लि०
- कृएक्स ग्लोबल विजन लि०
- कृएक्स एडवर्टाईजर्स प्रा० लि०
- निष्पक्ष अमरदीप (साप्ताहिक पत्र)

कमलेश कुमार गुप्त
अध्यक्ष व प्रबन्ध निदेशक

रजि० एवं प्रधान कार्यालय : कृषि एक्सपोर्ट प्लाजा (नटराज सिनेमा के सामने)
सिगरा, वाराणसी फोन : 361854, 360950

कार्पोरेट कार्यालय : कालका जी, नई दिल्ली

'नादार्चन' के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाओं सहित :

फोन : 351694, 354694

खत्री स्टेशनर्स

शादी के कार्ड, नववर्ष, होली, दीपावली व अन्य शुभ अवसरों के कार्ड, डायरी व कैलेण्डर के एकमात्र थोक एवं फुटकर विक्रेता एवं स्क्रीन प्रिंटिंग के विशेषज्ञ—

पता : कन्हैया चित्र मन्दिर के पास, हौज कटोरा (गौदोलिया) वाराणसी—221001

आपकी संतुष्टि ही हमारी उपलब्धि है

With Best Compliments From :

Pradeep Kumar Dubey

General Secretary, Students' Union

Banaras Hindu University, Varanasi.

With Best Compliments From

LATE SHRI VIJAY DEO MISHRA

Founder of Kusum Palace (Cinema Hall)

Khonjwa, Varanasi

Phone : 310168

Shri INDRA DEO MISHRA
Shri ANANT DEO MISHRA
Shri ARUN KUMAR MISHRA
Shri SUSHIL KUMAR MISHRA
Shri BIPIN KUMAR MISHRA

With Best Compliments From :

DUNCAN GOENKA

STONE INDIA LIMITED

16, TARATALLA ROAD, CALCUTTA - 700 088
Cable : Stoneco Calcutta
Phone : 4784661 - 668 Fax : 478 4886
Telex : 021 8148

Manufacturers of :

- ★ TRAIN LIGHTING ALTERNATORS & CONTROL GEAR
- ★ TRAIN LIGHTING ANCILIARIES
- ★ BRAKE REGULATORS FOR RAILWAY ROLLING STOCK
- ★ PANTOGRAPHS FOR ELECTRICAL LOCOMOTIVES & EMU STOCK
- ★ NAVIGATIONAL AIDS
- ★ D. C. MOTORS
- ★ AIR BRAKE FOR RAILWAY ROLLING STOCK
- ★ NON-ASBESTOS COMPOSITE BRAKE BLOCKS
- ★ RUBBER DIAPHRAGM, GASKET & 'O' RING FOR BRAKE VALVES

Branches at

NEW DELHI ★ BOMBAY ★ MADRAS ★ CALCUTTA

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि नादतनु भगवान शंकर की नगरी
काशी, जो आदि काल से ही संस्कृति और संगीत का केन्द्र
रही है, आज भी उच्चकोटि के संगीतज्ञों, विद्वानों
व कला - मर्मज्ञों से सुशोभित है। काशी की इसी
गरिमा - गह्वर से समुत्पन्न उसका एक
अप्रतिम - उदात्त नवोन्मेष है–
'नादार्चन'।

卐

It is an universally
honoured truth that Kashi,
the city of Nadtanu Lord Shankar
has been the centre of culture and music
since very ancient times, is adorned with
high ranking scholars and virtuosos, even today.
The birth of the 'Nadarchan' is illustrious manifestation
to the same ratification of the dignity of Kashi.

NADARCHAN MUSIC ANNUAL
374/A D. L. W. VARANASI-221004 (INDIA) PHONE : 0542–372637

Printed at : Jai Bharat Printing Press D. 51/168 C-2 Surajkund, Varanasi

Price : Rs. 35.00 (In India) ★ U.S. Dollars 10.00 (overseas)